विचार दृष्टि

वर्ष 11 | अप्रैल–जून, 2009 | अंक–39 | मूल्य : 25 रुपए

Emmar MGF • Creating & New India

EMAAR MGF

CREATING A NEW INDIA

RESIDENTIAL I COMMERCIAL, IT PARKS & SETz I RETAIL I HOSPITALITY I HEALTHCARE* I EDUCATION* I INFRASTRUCTURE*

Corporate Office : Emaar MGF Land Limited, ECE House, 28 Katurba Gandhi Marg, New Delhi-110001, Tel. : +91-11-4152 1155, Fax : +91-11-4152 4619, www.emaarmgf.com

विचार दृष्टि

(राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक त्रैमासिकी)

वर्ष- 11 अप्रैल-जून, 2009 अंक- 39

संपादकीय सलाहकार : नंद लाल
संपादक-प्रकाशक : सिद्धेश्वर 9873434086
उप संपादक : डॉ॰ शाहिद जमील 9430559161
सहायक संपादक : उदय कुमार 'राज़' 9868105864
सहायक संपादक : उपेन्द्र नाथ 9313045675
प्रबंध संपादक : सुधीर रंजन 9811281443
आवरण साज-सज्जा : अनिल वार्ष्णेय

संपादकीय-प्रकाशकीय कार्यालय

'दृष्टि', 6 विचार विहार, यू॰-207,
शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
☎ : (011) 22530652 /22059410
मोबाईल : 9811281443/9899238703
फैक्स : (011) 22530652
E-mail: vichardrishti@hotmail.com
'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001
☎ : 0612-2510519

पटना कार्यालय

आर॰ ब्लॉक, पथ सं॰ 5, आवास सं॰ सी॰/6,
पटना-800001 ☎ : 0612-2226905

ब्यूरो प्रमुख

कोलकाता : जितेन्द्र धीर ☎ 24692624
चेन्नई : डॉ॰ मधु धवन ☎ : 26262778
तिरूवनंतपुरम : राजम नटराजम पिल्लै
☎ : 09820229565
बैंगलूरू : बी॰एस॰ शांताबाई ☎ :
हैदराबाद : डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा ☎ : 23391190
जयपुर : डॉ॰ नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' ☎ : 2225676
अहमदाबाद : रमेश चंद्र शर्मा 'चंद्र'
देहरादून : बडोनी

प्रतिनिधि

दिल्ली : प्रो. पी. के. झा 'प्रेम'
एन.सी.आर : प्रो. मनोज कुमार, संजीव कुमार
तिरूवनंतपुरम : डॉ॰ पी॰ लता
हैदराबाद : चंद्रमौलेश्वर प्रसाद
जयपुर : कृष्णावीर द्रोण
हिसार : डॉ॰ रामनिवास 'मानव'
देहरादून : डॉ॰ राज नारायण राय
उत्तरी बिहार : नरेन्द्र मिश्र

वित्तीय प्रबंधक : अरविंद कुमार उर्फ पप्पू
मुद्रक : प्रोलिफिक इनकारपोरेटेड एक्स-47, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-20

मूल्य एक प्रति	:	25 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	200 रुपये
आजीवन सदस्य	:	1000 रुपये
विदेश में एक प्रति	:	US $ 05
वार्षिक	:	US $ 20
आजीवन	:	US $ 250

एक में रचना और रचनाकार

पाठकीय पन्ना ... 2

संपादकीय :
ऊँचा होता शिक्षा का स्तर और लुप्त होती संस्कृति ... 4

विचार प्रवाह :
मानवाधिकारों का भारतीय परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक मूल्यांकन ... 7
डॉ॰ गार्गीशरण मिश्र 'मराल'

साहित्य :
तमिल भाषा में राष्ट्रभक्ति साहित्य ... 10
डॉ॰ र॰ शौरिराजन
साहित्यिक पत्रिकाओं का अर्थशास्त्र.. 15
जितेन्द्र धीर
भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत उपेक्षित क्यों? ... 17
डॉ॰ गिरीन्द्र नाथ झा

लघुकथा
शुक्ला चौधरी की दो लघुकथाएँ . . . 18
डॉ. 'मानव' की दो लघुकथाएँ . . . 19

काव्य-कुंज
हितेश कुमार शर्मा, नलिनी कांत, बसंत कुमार, निलय उपाध्याय... 20

समीक्षा :
बदलती जीवन-स्थितियों की ... 22
सिद्धेश्वर
अंधकार को हम क्यों धिक्कारें? अच्छा है, एक दीप जलाएँ ... 23
डॉ॰ ऋषभ देव शर्मा
चिंतन, मनन एवं अध्ययन का उत्कृष्ट निदर्शन ... 24
डॉ॰ योगेन्द्र प्रसाद

दृष्टि :
उपेक्षा की क्रूरता झेलते बुजुर्ग ... 25

समाज :
इतिहास के साथ खिलवाड़ न हो ... 28
डॉ॰ दीनानाथ 'शरण'
सामाजिक विकास में संस्कृत की भूमिका ... 32
लक्ष्मीकांत मिश्र

शख़्सियत :
महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ... 35
डॉ॰ महेशचंद्र शर्मा
संस्कृत साहित्य के-क्रांतदर्शी महाकवि कालिदास ... 37
सिद्धेश्वर

यात्रा-वृतांत :
वैभारगिरि के सात झरने ... 38
ईश्वर प्रसाद 'मय'

राष्ट्र :
विरोधाभास ... 39
हितेश कुमार शर्मा

शिक्षा :
शिक्षा की अवधारणा बनाम आधुनिक शिक्षा ... 41
सविता लखोटिया
अपने मकसद से पिछड़ती शिक्षा ... 42
प्रो॰ प्रेम मोहन लखोटिया

व्यंग्य :
गधा घिस-घिस कर गर्द हो गया ... 44
कमला विश्वनाथन

गतिविधियाँ :
रेणु की पृष्ठभूमि में वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य ... 47
सिद्धेश्वर
पूर्व मेदिनीपुर का गेहूँ खाली 52
शिव कुमार सिंह

समीक्षा समीक्षा समीक्षा समीक्षा लघु कथा लघु कथा शोध

पत्रिका-परामर्शी

❑ पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ❑ डॉ॰ एन॰ चंद्रशेखरन नायर
❑ प्रो. धर्मेंद्र नाथ 'अमन' ❑ डॉ॰ बालशौरि रेड्डी ❑ डॉ॰ अहिल्या मिश्र
❑ डॉ॰ देवेन्द्र आर्य ❑ डॉ॰ देवेन्द्र आर्य

पत्रिका-परिवार के सभी सदस्य अवैतनिक हैं
रचनाकारों के विचारों से पत्रिका-परिवार का सहमत होना आवश्यक नहीं।

प्रिय पाठक एवं लेखक,

'पाठकीय प्रतिक्रिया' वास्तव में पत्रिका परिवार के लिए एक दर्पण-सा होता है। यही कारण है कि हमें प्रकाशित रचनाओं और समग्र रूप में प्रस्तुति पक्ष पर आपके बेबाक विचारों / उचित प्रस्तावों का बेसब्री से इंतज़ार रहता है। प्राप्त पाठकीय प्रतिक्रिया एवं प्रस्तावों को हम न केवल प्रकाशित करते, बल्कि उनपर विचार भी करते हैं। 'संपादकीय कोप' का कोई ख़तरा नहीं है। नए स्तंभों की शुरुआत और समय-समय पर संशोधन-परिवर्तन इसका प्रमाण है। दूसरे दशक के सफ़र में पत्रिका और अधिक स्तरीय, पठनीय, संग्रहणीय, सुंदर एवं आकर्षक हो इसमें पाठकों और लेखकों का सक्रिय सहयोग अपेक्षित है।

प्राप्त पाठकीय प्रतिक्रियाओं से हम केवल उन्हीं प्रतिक्रियाओं आदि को शामिल कर पाते हैं, जिनमें वस्तुनिष्ठ, कृतियों से संदर्भित संक्षिप्त समीक्षा / टिप्पणी या मार्गदर्शक बिंदु होते हैं। भ्रामक प्रशंसा और ईर्ष्या-दर्शी विचारों के प्रेषण से डाक-ख़र्च ज़ाया होता है।

❍ उप संपादक

देशभक्ति के भावों को ताज़ा करती पत्रिका

कभी इतिहास के पन्नो में पढ़ा था कि राष्ट्रीय भावनाओ को जागृत करने में पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, पर अब तो ऐसी पत्रिकाएँ भी इतिहास का हिस्सा हैं, आपकी पत्रिका देशभक्ति के पुराने भावों को फिर से ताजा कर गई।

हम महिलाओं के साथ ये परेशानी अक्सर रहती है कि हम रचनाएँ लिखते हैं, पढ़ते हैं, अनुभव करते हैं और कोई रचना दिल से लग जाए, तो रो भी लेते हैं, पर रचनाकारो-पत्रिकाओं को एक प्रशंसा पत्र लिखने का वक्त अक्सर नहीं निकाल पाते, पर जब 'सरस्वती सुमन' में 'यह सिर्फ खत नहीं' पढ़ा तो खुद को रोक नहीं पाई। ऐसा लगा कि वो ना खत है ना कहानी, बल्कि हृदय की एक सूक्ष्म अनुभूति है जो दिल के बहुत करीब लगी। अगर वो व्यक्तिगत है, तो ठीक है, आप सिद्धहस्त हैं अपनी भावनाआ को कागज पे उतारने में, लेकिन अगर कहानी हुई तो? मेरे पास तो शब्द नहीं आगे कुछ लिख पाने का।

– शुक्ला चौधरी

22-सी, जगत राय चौधरी रोड,
पो॰- बारिशा, कोलकाता-700008

प्रिय लेखकों से विशेष अनुरोध

- ❍ रचना की छाया / कार्बन प्रति या अस्पष्ट हस्तलिखित प्रति प्रेषित न करें।
- ❍ रचना के मौलिक एवं अप्रकाशित/ प्रकाशित होने की सूचना अंकित करें।
- ❍ रचना के अंत में पत्राचार का पूरा पता दूरभाष सहित अंकित करें।
- ❍ रचना के साथ पासपोर्ट आकार का फ़ोटो एवं जीवन-वृत्त संलग्न करें।
- ❍ समीक्षा हेतु पुस्तक / पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजें अन्यथा केवल प्राप्ति सूचना ही प्रकाशित की जाएगी।
- ❍ अन्य भाषाओं की कालजयी / उत्कृष्ट रचनाओं का हिंदी अनुवाद प्रकाशनार्थ भेजें।
- ❍ रचना के प्रकाशन से संबंधित जानकारी हेतु जवाबी पत्र अवश्य संलग्न करें।
- ❍ श्रेष्ठकर होगा सी॰डी॰/ ई॰ मेल द्वारा रचनाओं का प्रेषण। हम उन्हें प्रकाशन में प्राथमिकता देते ह।
- ❍ हम युवा एवं नये रचनाकारों को भी प्रोत्साहित करते हैं।

: Email :

vichardrishtisj@gmail.com
drshahidjamil@rediffmail.com

❍ संपादक

ग़ज़ल
करामत अली करामत

है आदमी न सफ़र के लिए न घर के लिए
जधर बुलाती है रोज़ी, यह है उधर के लिए

बहार आई है, सुनते हैं, रहगुज़र के लिए
ख़बर यह अच्छी यक़ीनन है गुलमोहर के लिए

खिला है घास का इक फूल ज़र्द मौसम में
बुलाओ नामानिगारों को इस ख़बर के लिए

हर एक चीज़ न तुम ख़ाब में लुटा देना
बचाए रखो नज़ारे भी कुछ नज़र के लिए

जो दिल की बात है फ़ौरन उसे बता देना
नहीं है वक़्त ज़्यादा 'अगर-मगर' के लिए

नहीं है मंज़िले मक़सूद का पता, लेकिन
हर एक आदमी तैयार है सफ़र के लिए

बुला भी लो कभी तुम याद के दरीचों से
कि दूरियाँ नहीं अच्छी हैं उम्र भर के लिए

यह दुनिया एक तवाएफ़ है ख़ूबसूरत-सी
मुसाफ़िरों को बुलाती है रातभर के लिए

हैं रास्ते भी नए और ठोकरें भी नई
निकल पड़े हो करामत यह किस नगर के लिए

❋❋❋

संपर्क : रहमत अली बिलडिंग, दीवान बाज़ार, कटक उड़ीसा- 753001

जमीला ख़ुदाबख़्श की दो ग़ज़लें

मेरे दिल के घर में वह आए हुए हैं
मगर मुझसे खुद को छुपाए हुए हैं

मनौव्वर जहाँ नूर से हो गया
वह बुर्क़ा को रुख़ से उठाए हुए हैं

भला तू सिखाएगा मुझको जुनूँ क्या
कि हम ख़ुद सिखाए-पढ़ाए हुए हैं

हमें तेग़े अबरू से अब क़त्ल कीजिए
कि क़दमों पे हम सिर झुकाए हुए हैं

न क्यों जल्वागर दिल में नूरे ख़दा हो
ख़ुदी को हम अपनी मिटाए हुए हैं

रक़ीबों से अन-बन हुई है आज शायद
कि इस वक़्त वह मुँह बनाए हुए हैं

जमीला हिला देंगे चिराग़े कुहन को

आरज़ू बनके मेरे दिल में वह घर करते हैं
नूर बनके कभी आँखों में गुज़र करते हैं

रोके नाकाम मुहब्बत पे कहा करते हैं
नाल-ए-दिल भी नहीं उन पर असर करते है

शबे हिजराँ की हक़ीक़त को उसी से पूछो
उनकी फ़ुर्क़त में तड़पकर जो सेहर करते है

याद आता है मुझे नाविके मिज़ुगाँ उनका
दर्द जिस वक़्त मेरे ज़ख़्मे जिगर करते हैं

उनसे क्या पूछते हो घर में है राहत कैसी
दामने दश्त में जो उम्र बसर करते हैं

सदमा पहुँचे न कहीं नाज़नीन दिल को उनका
क्यों मुझे याद वह गुल आठ पहर करते हैं

सब्र का फल यह जमीला शबे फ़ुर्क़त मिला
तेरे नाले दिले अफ़्लाक में घर करते हैं

मिज़ूगाँ : पलक, अफ़्लाक : आकाशों

संपर्क : खुदाबख़्श ओरिएंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना- 800004

ग़ज़ल
इल्ताफ़ हुसैन हाली

कोई मरहम नहीं मिलता जहाँ में मुझे कहना है कुछ अपनी ज़ुबाँ में
क़फ़स में जी नहीं लगता किसी तरह लगा दो आग कोई आशियाने में

कोई दिन बवाउलहोस भी शाद हो लें धरा किया है इर्शादाते नेहाँ में
कहीं अंजाम आ पहुँचा वफ़ा का घुला जाता हूँ अब के इम्तेहाँ में

नया है, लीजिए जब नाम उसका बहुत वुसअत है मेरी दास्ताँ में
दिल पुरदर्द से कुछ काम लूँगा अगर फ़ुर्सत मिली मुझको जहाँ में

बहुत जी ख़ुश हुआ हाली से मिलकर अभी कुछ लोग बाक़ी है जहाँ में

ज़रा इनकी भी सुनें

❑ श्रीलंका के खिलाड़ी सद्भावना दूत के रूप में पाक गए थे। यह कायरतापूर्ण हमला है।

–महिन्द्रा राजपक्षे, श्रीलंका के राष्ट्रपति

❑ फिलस्तीन एक जटिल समस्या है। मैं इस मुद्दे को गंभीरता से लेती हूँ।

–हिलेरी क्लिंटन, अमेरिकी विदेश मंत्री

❑ इन हमलों का उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय बिरादरी में पाक का नाम खराब करना है।

–युसूफ रज़ा गिलानी, पाक प्रधानमंत्री

❑ बांग्लादेश में आज भी पाकिस्तानियों के लिए भारत विरोधी स्वर मुखर करना इस्लामी भाईचारे के नाम पर किसी दूसरे देश के खुफिया एजेंट की तुलना में कहीं अधिक आसान है।

–पुष्पेश पंत, प्राध्यापक, जे०एन०यू० दिल्ली

❑ पाक ने आतंक के खिलाफ ठोस क़दम न उठाए, तो ऐसी घटनाएँ होती रहेंगी।

–प्रणव मुखर्जी, भारत के विदेश मंत्री

❑ अमेरिकी मंदी संरक्षणवाद के कारण नहीं थी।

–भरत झुनझुन वाला

❑ भारत के ऑटो मोबाइल उद्योग भी अमेरिकी उद्योगों की तरह सरकार के सामने कटोरा लेकर खड़े होने की स्थिति में आ पहुँचे हैं।

–सुनीता नारायण, निदेशक, सेन्टर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट

ऊँचा होता शिक्षा का स्तर और लुप्त होती संस्कृति

आजादी के बाद हम भारतवासी स्वतंत्रता के उत्सव में ऐसे डूब गए हैं कि उत्सव के चकाचौंध से अपने आपको अबतक उबार नहीं सके हैं। शिक्षा में बढ़ोतरी तो हुई और उसके स्तर में सुधार हुआ, किंतु भौतिकवाद की शक्तियों ने हमारे देश की नाव में इतने अधिक छेद कर डाले कि वर्तमान परिदृश्य मानसिक एवं भौतिक स्तर पर तार-तार हो उठा और हम डावांडोल नैया के असहाय यात्री भर रह गए। असहाय होना हमारी सुचेष्टता की न्यूनता को दर्शाता है जिसके परिणामस्वरूप हमारी सोच, हमारा पौरुष, हमारा संस्कार और हमारा आत्मगौरव मृत हो गया है।

बदलते समय के साथ संस्कृति का स्वरूप बड़ी तेज़ी से बदल रहा है। निःसंदेह देशवासियों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ा है, मगर यह भी सत्य है कि शिक्षा में वृद्धि के साथ ही हम जातियों, धर्मों, भाषाओं तथा क्षेत्रीयता के नाम पर आपस में पहले से अधिक बँटते चले जा रहे हैं और यही हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती बन गई है, क्योंकि इसी से अलगाव, परस्पर शत्रुता, घृणा तथा हिंसा फैलाने वाली ताक़तों को बढ़ावा मिलता है और हमारी संस्कृति में विकृत्तियाँ पनपती हैं। इसलिए समय का तक़ाज़ा है कि हम विभिन्न धार्मिक, भौगोलिक और भाषाई वर्गों के बीच सौहार्द का वातावरण बनाएँ जिससे विकास की गति तेज हो सके और लोगों का जीवन बेहतर बन सके।

पर यह होगा कैसे? आजादी के बाद राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय गीत यहाँ तक कि राष्ट्रीय पशु-पक्षी तक हुए पर राष्ट्रीय भाषा अब तक नहीं हो सकी। सच तो यह है कि सभी भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा तक को हम भुलाने का प्रयास कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में घोषित हिंदी भी अभी तक माथे की बिंदी बनने की बजाय विदेशी भाषा अँग्रेज़ी की सहचरी बनी हुई है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के चौधियाने और चकाचौंध करने वाले रंगीन दृश्य-श्रव्य विज्ञापनों ने हमारी भाषा को बाज़ार में इस्तेमाल की चीज़ बना दिया है। अँग्रेज़ी उत्तरदायी नागरिकों की नहीं, विचार-शून्य उपभोक्ताओं की भाषा है और यह विचारशीलता का चक्का ज़ाम करने वाली भाषा है।

दरअसल भाषा महज अभिव्यक्ति का एक माध्यम भर ही नहीं, वरन् उसका सामूहिक स्मृति से गहरा और स्थायी रिश्ता होता है। भाषा ही किसी समाज की सभ्यता व संस्कृति को सबसे अलग झलकाती है। यही उसके हृदय के भीतरी पूरजों का पता देती है। मगर दुःखद स्थिति यह है कि भारतीय भाषाओं को रोटी के बल पर पल रहे देश के तथाकथित संभ्रांत नागरिक व नौकरशाह की अँग्रेज़ी मानसिकता ने भाषा व साहित्य को सर्वाधिक नुक़्सान पहुँचाया है। पाठक साहित्य और संस्कृति की परंपरा से कटता जा रहा है और पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति उस पर हावी होती जा रही है। इसी का परिणाम है कि भारत में एकता की बातें सिर्फ़ नारों तक सीमित हो गई हैं।

राष्ट्रीय एकता, संस्कृति, संस्कार और देश की अस्मिता की पहचान को बरक़रार रखने के लिए ही हिंदी, उर्दू, संस्कृत, बंगला, मैथिली, भोजपुरी, मगही आदि की अकादमियों के अतिरिक्त संस्कृत शिक्षा बोर्ड का गठन हुआ था जिसका काम संस्कृति, भाषा और साहित्य के माध्यम से स्वभावगत स्वरूप, सामंजस्य, सहिष्णुता, मानवीयता और सद्भाव स्थापित करना था, लोगों की सोच में बदलाव लाना था। यह काम तभी होगा जब हम भारतीय एक दूसरे को जानें, पहचानें और परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करें, तभी किसी विचार के ख़्वाब को हक़ीक़त में बदला जा सकता है।

मगर देश में कई ऐसे वर्ग हैं जो अपनी-अपनी काली क़रतूतों से समाज व देश को दूषित कर रहे हैं ख़ासकर जब देश के कर्णधार लोग मार्ग से भटक रहे हैं और अपने पवित्र पेशे के साथ विश्वासघात कर रहे हैं, तो ऐसे समय में प्रबुद्ध तथा समाज के सजग व जागरूक लोग ही हैं, जो उनकी काली करतूतों का भंडाफोड़ कर सकते हैं तथा आमजनमानस को कुरेदकर उन्हें दिशा प्रदान कर सकते हैं।

दरअसल आज हमारी भारतीय संस्कृति का तेज़ी से लुप्त होते जाने की मुख्य वजह यह भी है कि हम वैदिक संस्कृति को भूलते जा रहे हैं, कथनी और करनी में कोई सामंजस्य आज नहीं दिखता। वैदिक संस्कृति में कथनी से बेहतर करनी को माना गया है। करनी ही भक्ति है, करनी ही ज्ञान है। वही आत्मबल को बढ़ाने वाली होती है। इससे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हासिल होता है। यह सृष्टि करनी का ही पर्याय है। इसके सारे

नियम करनी के लिए ही बनाए गए हैं।

अच्छी करनी इंसान को ऋषिदेवता और रहबर बना देती है। कर्म किए बगैर हम नहीं रह सकते। इसलिए जो करें, उसे बेहतर करें। इसी प्रकार भाषाओं के लुप्त होते जाने से भी हमारा सांस्कृतिक चरित्र समाप्त होता जा रहा है। भारतीय भाषाएँ चाहे संस्कृत हो या प्राकृत ये युगों-युगों से हमारे भारतीय समुदाय के सांस्कृतिक चरित्र का निर्माण करती आई है। भारत की प्रायः सभी भाषाओं ने अपने-अपने माध्यम से इस देश के सांस्कृतिक चरित्र और राष्ट्रीयता को धारण एवं मुखर किया है। देश की सीमाओं से परे विदेशी माटी में भी जब हम भारतीय भाषाओं की गूँज सुनते हैं, तो हमें उन भाषा-भाषियों के साथ भारतीयता तथा सांस्कृतिक एकता का बोध होता है। कारण कि भाषा जोड़ने का काम करती है और इससे अपनापन का बोध होता है। इसके साथ हमारा आध्यात्मिक, चारित्रिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चरित्र जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि भारतीय भाषाओं में विभिन्नता होते हुए भी एकता का बोध होता है, जिससे हम एक सूत्र में जुड़ते हैं। मगर, देश में आज जिस तेजी से क्षेत्रवाद का ज़ोर पकड़ रहा है, 'अनेकता में एकता' के स्वर धीमे पड़ने लगे हैं, वह गंभीर चिंता और शर्मनाक विषय है। ऐसी स्थिति में प्रबुद्धजनों एवं सजग नागरिकों का दायित्व बनता है कि ऐसे लोगों में भी आपसी समझ बेहतर बनाने की पहल करें।

दरअसल, जीवन के कुछ स्तंभ हैं, जिनके आधार पर सारा जीवन टिका है। अगर ये स्तंभ कमज़ोर हैं, तो जीवन का कोई महत्त्व नहीं है। ये आधार हैं दृढ़ संकल्प, आत्म विश्वास, निश्चित उद्देश्य, अनुकूल वातावरण और सही विचार। ऐसी शक्तियों पर जीवन का ढाँचा निर्भर होता है। इन सारे आधारों और ऐसी शक्तियों को सशक्त कर प्रबुद्धजनों को आगे बढ़ना होगा तभी हमारी राष्ट्रीय एकता और भारतीय संस्कृति की रक्षा की जा सकती है। इसके लिए उन्हें आत्मविश्वास पैदा करना होगा, क्योंकि आत्मविश्वास वह शक्ति है जो तूफानों जैसी विपत्तियों को मोड़ सकती है, संघर्षों से जूझ सकती है। हर व्यक्ति अपनी कामनाओं को मूर्त रूप प्रदान कर सकता है, बशर्ते कि वह अपनी इच्छाओं के प्रति सजग और ईमानदार हो।

दरअसल, मौजूदा दौर में जिस चीज की समझ धीरे-धीरे समाप्त सी होती जा रही है वह है मानव जीवन का सम्मान। जबतक यह सम्मान हमारे विचार और व्यवहार में दाख़िल नहीं होता, सांस्कृतिक बिगड़ाव बढ़ता ही जाएगा। इसलिए हमें ऐसा कोई कर्म नहीं करना है जिससे मानव जीवन का अवमूल्यन होता है। ऐसा तभी होगा जब हम अपनी सामाजिक आंतरिक कमजोरियों से लड़ें और अपनी अंतर्निहित कायरता से लड़ें। जो समाज कायरतापूर्ण कार्यों को पैदा करता है, समर्थन देता है उसके पतन को कोई रोक नहीं सकता। हमारे मानवीय रिश्तों में प्रेम और सौहार्द की उपस्थिति आवश्यक है, क्योंकि पारिवारिक और सामाजिक संदर्भों में रिश्ते और संबंध प्रेम की बुनियाद पर ही टिके हैं। शिक्षा की सार्थकता यही है कि वह इस बुनियाद को और अधिक सुदृढ़ बनाए। शिक्षा और इससे प्राप्त विद्या का काम ही है हमें निरंतर परिमार्जित करते रहना, प्रमाद की ओर धकेलना नहीं। लेकिन आज स्थिति यह है कि शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के बाद भी वह हमें प्रमाद और अपसंस्कृति की ओर धकेल रही है जिसके दुष्परिणामस्वरूप हमारी संस्कृति लुप्त होती जा रही है।

ऐसी स्थिति में हर सजग सांस्कृतिक नागरिक व समाज के घटकों का यह मान्य सामाजिक सरोकार हो जाता है कि हर हाल में परंपरा की रक्षा की जाए, मृत प्राय अच्छी परिपाटियों को पुनर्जीवित किया जाए और आँख मुंदकर विगत इतिहास की काल्पनिक स्मृतियों की समीक्षा करें कि हम सब यह सही ढंग से कर रहे हैं या नहीं अथवा उसे करना बदलते समय में उचित है या नहीं? वर्तमान में भी देश व समाज के इर्द-गिर्द परिवेश में जो अकथ व अकल्पनीय घटित हो रहा है उससे हमारी संस्कृति निश्चित रूप से आहत हो रही है। यही नहीं व्यक्ति के चरित्र की परिवारिक जीवन की शर्मनाक विषादमय स्थिति विषाक्त हो गई है। आचरण की शुचिता, विवाह की मर्यादा सुरक्षित पारिवारिक जीवन सबके सब पर खतरे मंडरा रहे हैं। निश्चित रूप से यह चरम भोगवादजन्य अपसंस्कृति का ही परिणाम है।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में जब हम आज की शिक्षित नारियों के मनोविज्ञान को पढ़ते हैं, तो पाते हैं कि सांस्कृतिक मूल्यों में संक्रमणस्वरूप मूल्यों के प्रति नारी सहिष्णुता में जो कमी आई है उसी के परिणामस्वरूप त्याग व बलिदान जैसी उदात्त भावनाओं को आधुनिक नारी नकार रही है। आज की नारी की संक्रमित मूल्य-निष्ठा के साथ-साथ, भारतीय संस्कृति पर छाए हुए घटाटोप अँधकार का भी बोध होता है, क्योंकि शिक्षित आधुनिक नारियों में पश्चिमी उपभोक्तावादी अपसंस्कृति का अंधानुकरण की मनोवृत्ति में निरंतर विकास हुआ है। यह अंधानुकरण की प्रवृत्ति नारी के

विवेक को नष्ट का उसकी सांस्कृतिक निष्ठा को नष्टकर देती हैं जिसके दुष्परिणामस्वरूप आत्म-सुख ही नारी के लिए सर्वोपरि हो जाता है और सांस्कृतिक मूल्यों से भटकी हुई नारी, भोगवाद के प्रपंच में खोकर सचमुच अपने पैरों तलें की जमीन से वंचित हो रही है।

तो आइए, हम आज इस पारकीय संस्कृति और सभ्यता से दूर होने का संकल्प लें और युवा वर्ग हो या महिला समाज, संवेदनाओं के माध्यम से अनुभूतियों के गहरे तक उतरकर समाज के लिए संदेश उत्पन्न करने का काम करें।

कहना नहीं होगा कि मानव समाज संस्कृति का निर्माण करता है और व्यक्ति उसे अपने आचरण और व्यवहार में धारण करता है। जिस प्रकार समाज निरंतर बदलता रहता है, ठीक उसी प्रकार संस्कृति भी बदलती रहती है। इसीलिए आचार्य नरेन्द्र देव संस्कृति को 'मानव चित्त की खेती' कहते थे। नई फसल उगाने के लिए खेत को जोतकर जिस प्रकार अनुर्वर मिट्टी को नीचे और नीचे से उर्वर मिट्टी को ऊपर किया जाता है, उसी प्रकार लोक की रूचियों में परिवर्तन के साथ संस्कृति में भी परिवर्तन आता है। इसलिए संस्कृति पुनर्नवा होती है। यानी समाज, संस्कृति और लोक मिलकर पुनर्नवा जीवन के अस्तित्व, शक्ति और रस का सृजन करते हैं।

जन प्रतिनिधि ऐसा चुनें, जो जन-गण-मन का अधिनायक बन सके

15वीं लोक सभा का चुनाव होने को है। चुनाव भारत भाग्य बदलने का एक दुर्लभ अवसर है। इसलिए इसमें एक ऐसा भाग्य विधाता यानी सांसद चुनें, जो जन-गण-मन का अधिनायक बन सके। मगर याद रखें टिकटों की बिक्री और चुनाव खर्च के लिए इकट्ठा किए जा रहे धन का ब्योरा जिस प्रकार सामने आ रहा है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि उम्मीदवार राष्ट्रीय हितों की अनदेखी कर व्यक्तिगत ऐश्वर्य और सत्ता सुख के लिए वे चुनावी अखाड़े में पूँजी निवेश करने को तैयार हो रहे हैं। पिछले लोक सभाओं में आपने देखा कि किस तरह मूंदड़ा कांड, नागरवाला और बोफोर्स कांड, सुखराम मामला, चारा घोटाला, मेधा घोटाला, हवाला कांड, तहलका, पनडुब्बी खरीद, गेहूँ आयात घोटाला तथा कबूतरबाजी जैसे प्रकरण राजनेताओं व सांसदों की साख पर आँच डालते रहे और संसद भवन में नोटों की गड्डी लहराते रहे जिसने लोक सभा के साथ-साथ पूरे देश को शर्मसार किया।

आज जब हम पुनः लोकसभा के सदस्यों का चुनाव करने जा रहे हैं, तो इस बात पर ध्यान देना होगा कि क्या ऐसे बाजारू लोगों के सौदों पर टिकी सरकार चुनना जनहित और राष्ट्रहित में होगा? जिस देश की जनता अपने प्रतिनिधि का चयन करने में लापरवाही बरते या उसका चुनाव जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता तथा धनबल व बाहुबल पर आधारित हो, क्या उसका कभी अच्छा परिणाम निकल सकता है? कतई नहीं।

अमेरिका और चीन में भले परस्पर भिन्न समाज व प्रणाली हों, मगर इतना तो तय है कि वहाँ की जनता व उसके प्रतिनिधियों ने अपने-अपने देश को दुनिया में सर्वश्रेष्ठ, समृद्ध और शक्तिशाली बनाना अपना मुख्य धर्म समझा। वहाँ की जनता ने देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप स्वयं को बदला और एक ऐसे लोकतंत्र के ढाँचे को मजबूत किया जिसमें राष्ट्रीयता की भावना प्रखर रूप में परिलक्षित होती है। आपने देखा कि बराक ओबामा और हिलेरी क्लिंटन दोनों एक दूसरे के कट्टर विरोधी उम्मीदवार थे अमेरिका के राष्ट्रपति पद के लिए, फिर भी चुनाव के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति ओबामा के मंत्रिपरिषद् में देश की खातिर हिलेरी क्लिंटन ने विदेश मंत्री का पद संभाला। क्या हमारे देश में हमारे राजनेता ऐसा सोच सकते हैं? इसलिए इस देश की जनता के समक्ष इस चुनाव ने यह चुनौती खड़ी कर दी है कि जनता ऐसे सांसदों को चुने, जो जनता के प्रति प्रतिबद्ध और राष्ट्र के प्रति सजग हों। क्या हम और आप इसके लिए तैयार हैं? यदि हाँ, तो संकल्प लें कि जनप्रतिनिधि चुनने का आधार जाति, संप्रदाय, भाषा, धनबल और बाहुबल न बनाएँ तथा ऐसे सांसद बनाएँ, जिनमें त्याग की भावना, देश के प्रति समर्पण का भाव हो और अपेक्षाकृत ईमानदार हों। आज पूरा राष्ट्र पूरी तरह राष्ट्रीय हितों के प्रति समर्पित राजनीतिक नेतृत्व की जरूरत महसूस कर रहा है। इसलिए समय का तकाजा है कि केवल उन्हीं उम्मीदवारों को वोट दिया जाए, जो काम करने का वचन दे। उम्मीदवारों को ठोक-बजाकर देख लिया जाए कि चुनाव जीतने के बाद वाकई वे काम करने लगेंगे। क्योंकि आज देश सांसद एवं विधायक की प्रकृति से पूरी तरह वाकिफ है कि वे देशहित की खातिर, कोई भी काम न करके स्वहित में ही लगे रहते हैं और दो-चार पीढ़ियों तक के लिए धन बटोरकर रख लेना चाहिते हैं। अतएव सांसद चुनने के वक़्त हम सजग और चौकस रहें, ताकि अच्छे लोग संसद में जा सकें।

मानवाधिकारों का भारतीय परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक मूल्यांकन

○ डॉ० गार्गीशरण मिश्र 'मराल'

मानवाधिकारों का संक्षिप्त इतिहास– द्वितीय विश्व युद्ध से हुई विनाशलीला-जनधन की हानि एवं मानवाधिकारों के हनन से दुखी होकर विश्व के देशों ने भविष्य में विश्व-युद्ध को टालने, विश्व शांति सुनिश्चित करने एवं मानव मात्र को सुख-शांति दिलाने हेतु संयुक्त राष्ट्र की स्थापना की। संयुक्त राष्ट्र ने अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए 10 दिसंबर सन् 1948 को 30 मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की। उसने अपेक्षा की कि विश्व के सभी देश अपने नागरिकों को ये मानवाधिकार दिलाने हेतु आवश्यक क़दम उठाएँगे। अपने देश के संविधान अथवा क़ानून में इनका समावेश कर संरक्षण करेंगे। किंतु आगामी 45 वर्षों तक ऐसा नहीं हो सका। फलतः मानवाधिकारों की समस्या पर पुनर्विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने सन् 1993 में आस्ट्रिया की राजधानी वियना में विश्व के सभी देशों के प्रतिनिधियों को बुलाया। एक सप्ताह के गहन विचार-विमर्श के बाद सन् 1948 में घोषित मानवाधिकारों को यथावत् मान्य करते हुए विश्व के देशों ने इन्हें अपने-अपने देश में लागू करने का निर्णय लिया। तभी से मानवाधिकार संपूर्ण विश्व में चर्चा का विषय बने हुए हैं

मानवाधिकारों की अवधारणा का जन्म– संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में पश्चिमी देशों की प्रमुख पहल के कारण यह अवधारणा बनी कि मानवाधिकारों की अवधारणा का जन्म पश्चिम में हुआ। किंतु यह सच नहीं है। भारत में हज़ारों वर्षों से मानवीय गरिमा एवं समानता का संदेश दिया जाता रहा है। भारत ने ही सर्वप्रथम विश्व को ''बसुधैव कुटुंबकम्'' का विचार दिया। हमारे शांति-पाठ संपूर्ण विश्व को विश्व शांति का संदेश देते रहे। हमारे अनेक धार्मिक/आध्यात्मिक ग्रंथों में विश्व-शांति की कामना की जाती रही है। हमने विश्व-शांति की कामना ही नहीं की उस पर अमल भी किया। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि भारत ने किसी अन्य देश पर आक्रमण कर उसे सैन्य शक्ति से जीतने का प्रयास नहीं किया जबकि प्राचीन भारत इसके लिए पूर्ण सक्षम था। हमारे इस आचरण का कारण था भारत का धर्म प्राण होना। तभी तो मनुस्मृति में जहाँ धर्म, अर्थ और काम की समष्टि को सुख का आधार बताया गया वहाँ यह भी कहा गया कि यदि अर्थ और काम धर्म के विपरीत हों, तो उन्हें त्याग देना चाहिए।

परित्यजेदर्थ कामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।

प्रतिदिन की जाने वाली प्रार्थना में भी सभी के सुख की कामना की गई है।

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया।

इससे स्पष्ट है कि भारत में सभी को सुख और शांति से जीवन यापन का अधिकार दिये जाने की बात कही गई है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए, तो संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रदत्त सभी 30 मानवाधिकारों का समावेश सुख और शांति से जीवन यापन के अधिकार में हो जाता है। कारण स्पष्ट है। वस्तुतः सभी मानवाधिकारों का लक्ष्य मानव जीवन को सुख-शांतिमय बनाना है। अतः यह निर्विवाद है कि मानवाधिकारों की अवधारणा का जन्म भारत में हुआ। इस अवधारणा की उद्घोषणा हजारों वर्ष बाद संयुक्त राष्ट्र ने मानवाधिकारों के रूप में की।

कुछ अन्य उदाहरणों से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी। इतना ही नहीं इससे यह तथ्य भी उजागर होगा कि भारत ने अपने नागरिकों को मानवाधिकार ही नहीं दिए, बल्कि उनके संरक्षण की भी सफल व्यवस्था की। इस सफल व्यवस्था का एक ही महत्त्वपूर्ण सूत्र था कि कर्त्तव्य पालन करके ही अधिकारों की प्राप्ति की जा सकती है। अतः सर्वत्र धर्माचरण कर अथवा कर्त्तव्य पालन कर मानवाधिकार प्राप्त करने के निर्देश दिए गए हैं। अथवा यों कहें कि भारत में कर्त्तव्य पालन या धर्मातरण का ही निर्देश दिया गया है, क्योंकि उससे संबंधित अधिकार स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिये समानता के अधिकार को लें। मनुस्मृति में राजा को अपने सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समान दृष्टि से देखना चाहिए तथा निर्देश दिया गया है :

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समय।
तथा सर्वाणी भूतानि विभ्रतः पार्थिव व्रतम ॥

''जैसे धरती माता सभी प्राणियों को समान पोषण प्रदान करती है। एक राजा को बिना किसी भेदभाव के सबको पोषण प्रदान करना चाहिए'' चूँकि राजा सभी नागरिकों को समान दृष्टि से देखने का कर्त्तव्य निभाता था अतः सभी नागरिकों को समानता का अधिकार प्राप्त हो जाता था।

सुरक्षा के अधिकार के संबंध में मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है–

क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजानामेव पालनम।

सभी को शिक्षा का अधिकार दिलाने के लिए ऋषि-ऋण या गुरु ऋण चुकाना सबके लिए अनिवार्य किया गया था। ऋषि ऋण का तात्पर्य था कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने और बाद में उसे समाज को वापिस करने हेतु बाध्य था।

प्राचीन भारत में नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। इसीलिए कहा गया–

पूज्यन्ते यत्र नार्यस्तु रमन्ते तत्र देवता।

''जहाँ नारी की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं।'' इतना ही नहीं जब भगवान राम ने माता कौशल्या से कहा– ''पिता दीन्ह मोंहि मानन राजू'', तो माता कौशल्या का उत्तर था–

जों केवल पितु आयसु ताता तौ जनि जाऊ जानि बड़ि भाता।

यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि प्राचीन भारत में मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए किसी संविधान कानून या सरकार को नहीं धर्मानुसार आचरण-कर्त्तव्य पालन को आवश्यक माना गया है–

नैव राज्यं न राजा ङऽसीन दण्डो नच दाण्डिकः ।

धर्मेणैव प्रजाः रक्षन्ति स्म परस्परम ॥

न अपराधी जिसे दंडित किया जाना हो, लोग धर्म के अनुरूप आचरण करते थे और इस प्रकार एक दूसरे की रक्षा करते थे।

राजा को कर्त्तव्य परायणता का निर्देश देते हुए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है–

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानाम च हिते हितम् ।

नात्यं प्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥

लोगों के सुख में ही राजा का सुख निहित है; उनके कल्याण में उसका कल्याण; जो कुछ उसके अपने हित में है राजा उसे अच्छा नहीं मानेगा; किंतु जो कुछ लोगों के हित में है राजा उसे ही अच्छा मानेगा।

इस प्रकार धर्मानुसार आचरण अथवा कर्त्तव्य पालन राजा-प्रजा सभी के लिए उचित माना जाता था। प्राचीन भारत में कर्त्तव्य पालन की भावना प्रत्येक व्यवित के हृदय में शिक्षा एवं संस्कारों के माध्यम से भर दी जाती थी। इस प्रकार धर्माचारण या कर्त्तव्य पालन पर आधारित समाज ही मानवाधिकारों के संरक्षण की गारंटी था। इस धारणा ने भारत को 'कर्मभूमि' बनाया योगभूमि नहीं। यहाँ एक व्यक्ति के अधिकार को दूसरे व्यक्ति का कर्त्तव्य बना दिया गया। यदि यह कहा जाए की प्राचीन भारत में प्रत्येक नागरिक को केवल कर्त्तव्य करने का अधिकार दिया गया तो अत्युक्ति नहीं होगी। गीता में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' कहकर इसी बात की पुष्टि की गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में कर्त्तव्य निभाने पर उससे संबंधित अधिकार प्रत्येक नागरिक को स्वयमेव प्राप्त हो जाता था। साथ ही राजा भी प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन कर अपने नागरिकों को उनके अधिकार सहज ही उपलब्ध करा देता था।

यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरा रह ही नहीं सकता। हमारा कर्त्तव्य दूसरे का अधिकार है और दूसरे का कर्त्तव्य हमारा अधिकार है। अतः कर्त्तव्य करने पर उससे संबंधित अधिकार हमें अपने आप प्राप्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में अधिकार पाने के लिए कर्त्तव्य निभाना अनिवार्य शर्त है। इसलिए जो लोग कर्त्तव्य किए बिना अधिकार पाने हेतु प्रयत्नशील होते हैं वे समाज में संघर्ष और अशांति का कारण बनते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि अधिकार और कर्त्तव्य के संबंध में प्राचीन भारत का दृष्टिकोण वर्तमान पश्चिमी देशों के दृष्टिकोण से भिन्न है। प्राचीन भारत में धर्माचरण या कर्त्तव्य पालन को विशेष महत्त्व दिया गया। दूसरे शब्दों में प्राचीन भारत में कर्त्तव्य को प्राथमिकता दी गई। जिससे नागरिकों को अधिकारों की प्राप्ति शांतिपूर्वक स्वयमेव ही हो जाती थी। किंतु पश्चिमी देशों में अधिकारों को प्राथमिकता दी गई जिन्हें नागरिक अपनी सरकार से संघर्ष कर प्राप्त करते हैं, जिसमें संघर्ष और अशांति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। एक प्रेम और शांति का मार्ग है दूसरा संघर्ष और अशांति का। स्पष्ट है कि भारत का प्रेम और शांति का मार्ग कर्त्तव्य पालन कर अधिकारों की प्राप्ति करना श्रेष्ठतर है।

यहाँ एक अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदु की ओर ध्यान आकर्षित करना उचित होगा। जीवन मूल्य वस्तुतः धर्म या कर्त्तव्य का ही दूसरा नाम है। उदाहरण के लिए सहिष्णुता एक जीवन-मूल्य है। किंतु सभी धर्मों के विचारों और कर्मकाण्डों के प्रति सहिष्णु होना हमारा कर्त्तव्य है।

अतः मानवाधिकारों की प्राप्ति हेतु जिन कर्त्तव्यों का निर्वाह या जीवन मूल्यों का आचरण में समावेश आवश्यक है उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत हैं- संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता व समानता के प्रथम अधिकार, भेदभाव के दूसरे अधिकार की प्राप्ति हेतु हमें न्यायप्रियता तथा विश्वबंधुत्व के जीवन मूल्यों को जीवन में उतारना आवश्यक है। सुरक्षा के तीसरे और दासता से मुक्ति के चौथे मानवाधिकार की प्राप्ति हेतु अहिंसा और न्यायप्रियता के जीवन मूल्यों का आचरण में समावेश आवश्यक है। विधि के समक्ष एक व्यक्ति के रूप में मान्यता के छठवें, विधि के समान संरक्षण के सातवें, मूलाधिकारों के न्यायालयीन संरक्षण के आठवें गिरफ़्तारी

के विरुद्ध न्यायालयीन संरक्षण के नवें, आपराधिक आरोप पर निष्पक्ष अभिकरण से निर्णय पाने के दसवें, न्यायालय द्वारा दोषी क़रार दिए जाने तक निर्दोष माने जाने के ग्यारहवें, व्यक्ति की एकांतता, परिवार, गृह, पत्राचार में मनमाने हस्तक्षेप से मुक्ति के बारहवें, राज्य सीमा में विचरण एवं निवास के तेरहवें, देश में उत्पीड़न के विरुद्ध दूसरे देश में शरण पाने के चौदहवें, राष्ट्रीयता पाने और बदलने के पंद्रहवें, राष्ट्र, जाति, धर्म के बंधनों के विरुद्ध किसी व्यस्क द्वारा विवाह करने के सोलहवें, मानवाधिकार को पाने में सत्य, न्याय, अहिंसा, सहिष्णुता आदि मानवीय मूल्यों को जीवन में उतारना आवश्यक है। संपत्ति के स्वामित्व के सत्रहवें, विचार और धर्म की स्वतंत्रता के अठारहवें, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के उन्नीसवें, शांतिपूर्ण सम्मेलन के बीसवें, मानवाधिकार की प्राप्ति हेतु अस्तेय, अपरिग्रह, अहिंसा, सहिष्णुता एवं सत्य आदि जीवन मूल्यों/कर्त्तव्यों को अपनाने की आवश्यकता है। शासन में सहभागिता, मतदान करने व नौकरी पाने के इक्कीसवें, राज्य के संगठन एवं साधनों के उपयोग करने के बाइसवें, समान कार्य हेतु समान वेतन पाने, व्यावसायिक संघ बनाने के तेइसवें, कार्य एवं विश्राम की समय सीमा निर्धारित कराने के चौबीसवें, उचित जीवन स्तर हेतु भोजन, वस्त्र, आवास एवं स्वास्थ्य सेवा पाने के पच्चीसवें, अधिकार को पाने हेतु हमें सत्य, न्याय, सेवा, परिश्रम आदि जीवन मूल्यों/कर्त्तव्यों को अपनाना आवश्यक है। शिक्षा पाने के छब्बीसवें, कलात्मक एवं वैज्ञानिक प्रगति में सहभागी बनने के सताइसवें तथा मानवाधिकारों की प्राप्ति हेतु सामाजिक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था पाने के अठाइसवें, अधिकार हमें सत्य, न्याय, सेवा, धर्म आदि के जीवन मूल्यों/कर्त्तव्यों को अपनाकर ही प्राप्त हो सकते हैं। उन्तीसवाँ और तीसवाँ मानव अधिकार तो कर्त्तव्य रूप ही हैं।

मानवाधिकारों की प्राप्ति के मार्ग– मानवाधिकारों की प्राप्ति के दो मार्ग हैं। एक प्राचीन भारत का जिसमें कर्त्तव्य पालन को प्राथमिकता दी जाती है तथा कर्त्तव्य पालन के फलस्वरूप मानवाधिकारों की प्राप्ति अपने आप हो जाती है। इसमें मानव मूल्यों की शिक्षा एवं कर्त्तव्यपालक समाज की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इसमें अधिकारों और सरकारों का महत्त्व कम माना जाता है। दूसरा वर्तमान पश्चिमी देशों का जिसमें अधिकारों को विशेष महत्व दिया जाता है और उन्हें पाने के लिए संघर्ष किया जाता है तथा उनकी प्राप्ति शासन या सरकार द्वारा कराई जाती है। इसमें कर्त्तव्यों या कर्त्तव्य पालन का महत्त्व कम होता है। पहला मार्ग प्रेम, साधना और शांति का है जबकि दूसरा संघर्ष, विरोध तथा अशांति का है।

वर्तमान स्थिति– दुर्भाग्य से वर्तमान समय में मानवाधिकारों की प्राप्ति हेतु अधिकांश देश दूसरा रास्ता अपना रहे हैं। विश्व में संघर्ष, विरोध और अशांति का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है। कारण स्पष्ट है। नागरिकों को अधिकाधिक मानवाधिकार देने पर स्वार्थी सरकारों के विरोध का कारण यही है कि ऐसा करने से उनकी सुविधाएँ घटती हैं और उत्तरदायित्व बढ़ते हैं। भारत भी कर्त्तव्य पालन से नहीं संघर्ष से मानवाधिकारों की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील है। न्यायालयों में मुक़दमों की बढ़ती संख्या इस बात का प्रमाण है। सरकारी ख़र्च न घटाकर जनता पर टैक्स बढ़ाना भी इस बात का प्रमाण है। आज विश्व की अनेक सरकारें अपने नागरिकों को मानवाधिकार देने की बजाय उन्हें प्राप्त मानवाधिकारों का हनन कर रही हैं। भ्रष्टाचार, दुराचार एवं अत्याचार में संलग्न सरकारों से मानवाधिकारों की रक्षा की आशा करना एक दुष्कल्पना है। कारण स्पष्ट है। घोड़ा घास से दोस्ती करेगा तो खाएगा क्या? संपत्ति संग्रह, शोषण एवं स्वार्थ सिद्धि में संलिप्त सरकारों से नागरिकों को मानवाधिकार देने और उनका संरक्षण करने की आशा कैसे की जा सकती है?

अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान जैसे कुछ अमीर देशों में ऐसा लगता है कि वहाँ के सभी नागरिकों को मानवाधिकारों की प्राप्ति हो गई है। लेकिन वहाँ नागरिकों में व्याप्त आर्थिक विषमता इसके विरुद्ध गवाही देती है। अन्य देशों की तुलना में वहाँ के नागरिक अधिक खुशहाल हैं, तो उसका कारण है वहाँ की दूसरे देशों का शोषण कर स्वयं पोषण पाने की नीति। वे कहीं सैन्य शक्ति तो कहीं आर्थिक दबाव का सहारा लेकर दूसरे देशों का शोषण करते हैं। विश्वबंधुत्व एवं नैतिकता का ढोल पीटने वाले इन देशों के लिए क्या यह उचित है?

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विश्व में मानवाधिकारों का संरक्षण और संवर्धन तभी संभव है जब हर देश का हर नागरिक जीवन-मूल्यों को आत्मसात् करे, कर्त्तव्य पालन कर मानवाधिकार पाने हेतु प्रयत्नशील हो, सादा जीवन उच्च विचार का जीवनादर्श अपनाए तथा परमार्थ या जनसेवा हेतु स्वप्रेरित हो। यह कार्य प्राचीन भारत की जीवन शैली और गुरुकुल शिक्षा पद्धति में आज की आवश्यकतानुसार संशोधन कर अपनाने से हो सकता है। वस्तुतः आचरण की निर्मलता, साधना की निरंतरता, कर्त्तव्यबोध और कर्त्तव्य पालन की नीति के कारण ही भारत सोने की चिड़िया के साथ-साथ जगतगुरु बन सका था।

संपर्क : 1436, सरस्वती कालोनी, चेरीताल वार्ड, जबलपुर-482002

तमिल भाषा में राष्ट्रभक्ति-साहित्य

○ डॉ० र० शौरिराजन

राष्ट्र बहुआयामी संज्ञा है, विविध अर्थवत्ता उसका गुण है, व्यापक भावबोध उसका व्यक्तित्व है। 'राष्ट्र' शब्द क्षेत्र, प्रदेश, देश, महादेश और जन्मभूमि का पर्याय है, साथ ही, वंश, वर्ण, कुटुंब और नृजाति का द्योतक भी है। अर्थांतरों के साथ समन्वित यह वागर्थ (राष्ट्र) शाश्वत सत्यार्थ है जो वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक सार्थक तथ्य रहा है।

उदाहरण–

''सा नो भूमिः त्विषं बलं राष्ट्रे दधातु उत्तमे।''

(वह हमारी मातृभूमि उत्तम राष्ट्र के हेतु कांति एवं शक्ति धारण करे।)

- अथर्व वेद

''ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं ददस्मै देवा उपसंनमन्तु।''

-(राष्ट्र को बलशाली, ओजस्वी और प्रभुत्वपूर्ण बनाने वाले ऋषियों को नमन करने में देवगण गौरव का अनुभव करते हैं।) - अथर्व वेद

''राष्ट्रं प्रवर्धतु विभो, शान्तिः भवतु नित्यशः।

(-हे सर्वेश्वर, हमारे राष्ट्र की संवृद्धि हो और सुख-शांति सर्वदा बनी रहे।)

- वराह पुराण

''कर्णाटकाश्चैव तैलंगा गुर्जरा राष्ट्रवासिनः।
आन्ध्राश्च द्राविडाः पंच विन्ध्य दक्षिणवासिनः ॥''

- स्कन्द पुराण

''पुरो अधिकं उपरि अग्राण्यगारे नगरे पुरम्।
मंदिर चाथ राष्ट्रो अस्ती विषये स्यादुपद्रवे ॥

''आर्यावर्तः पुण्यभूमिः मध्यं विन्ध्य-हिमालयोः।
नीवृज् जनपदो देश-विषयौ तु अणवर्तनम् ॥

- अमर कोश

तमिल भाषा में 'राष्ट्र' के लिए प्राचीन काल से अब तक प्रचलित शब्द है 'नाडु', अर्वाचीन आयातित शब्द है 'देशम्' ये 'राष्ट्र' के समान व्यापक भावबोधक हैं।

तमिल तीन हज़ार वर्षों से व्यवहृत, विकसित, संपन्न, जीवंत भाषा है। इसका प्रथम उपलब्ध लक्षणग्रंथ है तोलकाप्पियम्, जो ई०पू० पाँचवीं शती का माना जाता है। ग्रंथकार का नाम तोलकाप्पियर जो ग्रंथ सापेक्ष नाम है, इसमें तमिल देश का गुणगान, ग्रंथ का परिचय, ग्रंथकार की बड़ाई आमुख में दप्रशस्ति-पद्य द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। प्रस्तोता थे तोलकाप्पियर के सहपाठी, कविवर पनंपारनारा उन्होंने लिख है–

''उत्तर दिशा में वेंकटगिरि (तिरुप्पति) से लेकर दक्षिण में कुमरि नदी तक (कन्याकुमारी से सुदूर दक्षिण में जो नदी बहती थी, अब हिंद महासागर में विलीन हो गई) हमारा प्यारा तमिल भाषी महादेश है। इसकी गरिमा के अनुसार, यहाँ प्रचलित साहित्यिक प्रौढ़ भाषा और सामान्य व्यावहारिक भाषा मधुर तमिल की संवृद्धि के लिए उसके वर्ण, शब्द और अर्थ विषयक लक्ष्य-लक्षण स्वरूपों का प्रतिपादन करते हैं प्रशस्त महापंडित तोलकाप्पियर।''

तोलकाप्पियर ने प्राचीन तमिलनाडु को पाँच प्रदेशों में विभाति किया है। ये हैं- विष्णु देवता को पूजने वाला वन प्रदेश (मुलली निलम्), स्कंददेव को पूजने वाले पहाड़ी प्रदेश (कुरिंचि निलम्), इंद्र देव द्वारा संपोषित कृषि प्रदेश (मरूत निलम्), वरुण देव को पूजने वाला सागर तटीय प्रदेश (नेय्तल् निलम्) और दुर्गा देवी की आराधना करने वाला बंजर प्रदेश (पालै निलम्)। यहाँ के निवासी क्रमशः व्याध (शिकारी), वनचर (जंगली जन), कृषक (खेतिहर), मछुए (नाविक) और डाकू-लड़ाकू लोग। तोलकाप्पियर ने इन प्रदेश वासियों के प्रति स्नेह-सौहार्द, सहयोग-सौजन्य रखने और अपने राष्ट्र (नाडु) के प्रति भक्ति, आस्था, आशा बनाए रखने का संदेश दिया। यह प्रदेश विभाजन उनके पूर्ववर्ती कालखंड में था। सामाजिक विकास-विस्तार होते रहे। उनके जमाने में बारह प्रांतों में बंटा था तमिल देश जिसे, 'चेंतमिल नाडु' (श्रेष्ठ तमिल राष्ट्र) कहा गया था। यह राष्ट्रनाम अब भी प्रचलित है देशवासची के रूप में।

तोलकाप्पियर के समय से लेकर परवर्ती शतियों तक चेंतमिल नाडु में ये बारह स्वायत्तशासी प्रांत (राज्य) थे– 1. पोंकर नाडु, 2. ओलि नाडु, 3. तेन् पाण्डिनाडु, 4. कुट्ट-नाडु, 5. कुट नाडु, 6. पन्रि नाडु, 7. कर्कानाडु, 8. शीत नाडु, 9. पुठिनाडु, 10. मलै् नाडु, 11. अरुवा नाडु, 12. अरूवा बडुतलै नाडु परवर्ती तमिल ग्रन्थों में इन प्रांतों का विशद् वर्णन पाया जाता है।

पूर्वोक्त चेंतमिल नाडु के सीमावर्ती, संबद्ध प्रदेश बारह थे, जिनमें से कोंकण, कर्नाटक, आंध्र, कलिंग आज भी अलग अस्तित्व रखते हैं, इन सबको मिलाकर संस्कृत भाषी विद्वानों ने 'द्राविड देश' की परिकल्पना की। भाषा परिवार, आचार-विचार, सांस्कृतिक संबंध और क्षेत्रीय संपर्क की दृष्टि से वह समन्वयी भूखंड था जो 'दक्षिणापथ' कहलाता था।

तोलकाप्पियर के समय से लेकर शतियों तक तमिलनाडु में संस्कृतभाषी मनीषियों द्वारा संकलित-प्रसारित भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना जो राष्ट्रभक्ति से अनुप्राणित है, फैली नहीं। विशेषकर यह भावना जो संस्कृतज्ञ अभिजात बुधजनों में पायी जाती थी–

''माता भूमिः पुत्राऽहं पृथिव्याः।''-अथर्ववेद

''न भारतात् वर्णम् पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः।''

-ब्रह्म पुराण

''उत्तरं यत्-समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षम् तत् भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥''

कारण, ई०पू० प्रारंभिक शातियों से लेकर ई० सातवीं शती तक 'राष्ट्रभक्ति' मात्र देश-प्रदेशगत भक्ति के रूप में पायी जाती है। फिर भी भारत के इतर प्रदेशों का वर्णन-स्तवन भक्ति-प्रधान तमिल ग्रंथों में पाया जाता है। रामायण, महाभारत, भागवत ग्रंथों का प्रचार-प्रसार मूल तथा अनुवाद के सहारे फैले, लोकप्रिय हुए। ''भक्ति द्राविड उपजी ...'' का गौरव तमिलनाडु को प्राप्त हुआ। संस्कृत भाषा दसवीं शती तक पूरे भारत के सत्ता, धर्म, संस्कृति और कला के क्षेत्रों में सम्मान्य संपर्क-भाषा रही। बाल्मीकि रामायण के श्रीराम का यह उद्‌गार-''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' तमिलनाडु के शिक्षित जनसमुदाय का भी अभिमत बन गया। इसलिए दसवीं शती से भारत राष्ट्र की अवधारणा, सम्मान्यता सार्वजनीन हुई जा रही थी। इसके पूर्व संघकालीन तमिल साहित्य में (ई०पू० तीसरी शती से ई० तीसरी शती तक) भारत के इतर प्रदेशों की बड़ाई, सुचर्चा पायी जाती है।

सात-आठ शतियों के कालखंड में, अनेक कवियों-कवयित्रियों से विरचित प्रशस्तिगीत, फुटकर पद्ध, प्रबंधकाव्य, इतिहास-गीत, वीरगाथा गीत, प्रेमी जीवन के संवेदन-गीत, सामान्य जनजीवन के वर्णन गीत आदि वाङ्मयी रचनाओं के संकलित अट्‌ठारह ग्रंथों को 'संघकालीन तमिल साहित्य' कहते हैं ये ई० तीसरी शती में संकलित किए गए। इनमें प्रमुख ग्रंथ हैं, चार सौ इतिहास गाथा गीतों का संकलन पुरनानूरु। इसमें 136 कवियों, 15 कवयितत्रयों, 14 अज्ञातनामों के गीत संकलित हुए हैं। अधिकांश गीत 'देशभक्ति' प्रधान हैं। यहाँ 'देश' शब्द प्रदेश, प्रांतर, क्षेत्र का प्रतीक है।

प्रशस्त संत कवयित्री औवैयारन ने एक गीत में कहा-''भूप्रदेश हो, वनप्रदेश हो या बंजर प्रदेश। वहाँ के निवासी पुरुष अपनी जन्म भूमि के प्रति भक्ति, श्रद्धा, आशा के साथ सुशील जीवन बितावें, तभी वह उत्तम प्रदेश कहलाएगा। प्रदेश (जन्म भूमि) की गरिमा वहाँ के देशभक्त; सुशील, वरी प्रजाजनों के कारण ही होती है, बढ़ती है।''

उस जमाने की दो गृहिणी माताओं की देशभक्ति-भावना के उदाहरण हैं-

''वीर सपूत को जन्म देना मेरा कर्त्तव्य है। पिता का कर्त्तव्य है उसे स्वस्थ, सुयोग्य और सुशिक्षित बनाना। राजा का कर्त्तव्य है, उसे कुशल सेनानी बनाना। मेरे बेटे का कर्त्तव्य है, मातृभूमि का मान रखे, देशभक्ति से प्रेरित हो, रणक्षेत्र में शत्रुदल का विनाश करे और उसी अभियान में वीरगति पा जावे। तभी मेरा मातृत्व सफल माना जाएगा।''

''एक वीर योद्धा रणक्षेत्र में शत्रुपक्ष के हाथी से भिड़ गया। उसके आक्रमण को रोका। तब उस वीर को गहरी चोट लग गई- जानलेवा हमला। धराशायी होने के पहले उसने हाथी पर प्राणघाती वार कर दिया। हाथी गिर पड़ा और मर गया। वीर ने मातृभूमि का जय-जयकार करते हुए प्राण निछावर किए, यह समाचार सुनकर उसकी माता हर्ष विभोर हुई कि मेरे लाल ने मातृभूमि का मान रखा और आख़िरी बेटे को हथियार के साथ रणक्षेत्र में भेज दिया।''

ऐसे अनेक प्रसंग संघ कालीन ग्रंथों में पाये जाते हैं, जो देवतास्तवन, जीवन मूल्यांकन और देश-भक्ति से अनुप्राणित हैं।

तमिल के संघोत्तर काल में (ई० दूसरी शती से छठी शती तक) वैदिक धर्म की अपेक्षा, बौद्ध-जैन धर्मों के प्रभाव बढ़े परिणामतः अठारह नीतिग्रंथ, धर्म-नीति बोधक महाकाव्य, कई लघु काव्य, धार्मिक ग्रन्थ रचे गए। नीतिग्रंथों में विश्वविख्यात है महामुनि तिरूवल्लुवर प्रणीत तिरूक्कुरल, जो तमिल वेद माना जाता है, यह सर्वधर्म-समभाव का उदात्त उदाहरण है। यह ई० चौथी शती का नीतिग्रंथ है। दोहा-छंद जैसे ''मुरळ'' छंद में (दो पंक्तियों वाला लघु छंद) रचे गये 1330 पद्‌ध इसमें हैं, और धर्म, अर्थ, काम के जीवनोपयोगी निर्देश हैं। इसके अर्थपरक अध्याय में 'नाडु' (देश-प्रदेश) पर दस पद्य रचे गये हैं। इनमें कहा गया है–

''उर्वर कृषि भूमि, कर्तव्यनिष्ठ सेवक, धर्मशील कुलीन सज्जन, प्रबुद्‌ध गुरुजन, नीतिपरायण वणिक धनिक जन, देशभक्ति पूर्ण सुशील प्रजाजन, सदाबहार प्राकृतिक संपदाएँ, सुखी जीवन की आवश्यक साधन संपन्नता, शक्तिशाली सुरक्षा, सुशासन, अत्याचार, दुराचार विहीनसमाज, यह सब श्रेष्ठ देश के लिए आवश्यक हैं।''

इसी प्रकार अन्य नीतिग्रंथों में भी स्वदेश की गरिमा पर निदेश-उपदेश पाए जाते हैं।

इस कालखंड के प्रमुख, प्रसिद्ध धर्म नीति प्रधान काव्य हैं (ई० दूसरी शती के) 'शिलप्पधिकारम', (ई० तीसरी शती के) 'मणिमेखलै' में तमिलदेश का गुणगान है, प्रजाजनों को नीति-नियम, धर्म-संस्कार के उपदेश दिए गए हैं। बौद्ध-जैन धर्मों से प्रभावित इन काव्यों में भारत के इतर प्रदेशों की भी बड़ाई की गई है– जैसे कि, ब्रज भूमि, मगध देश, अवंती-उज्जैनी नगरी, कलिंग देश, हिमालय पर्वत, श्रीलंका आदि।

इसके बाद का काव्यकाल ई० सातवीं शती से बारहवीं शती तक का माना जाता है। इस कालखंड में, पेरूंकतै (बृहद्‌कथा), जीवक-चिन्तामणि, चूलामणि, वलैयापति, कुण्डलकेशी, यशोधर कावियम् उदयणकुमार कावियम्, नीलकेशी, नागकुमार कावियम् आदि

काव्य रचे गए। इनमें अधिकांश जैन-पुराण कथाओं पर आधारित हैं। काव्यपात्र, घटना-स्थल, धर्म संस्कार, सामाजिक तत्त्व उत्तर भारत के हैं। रचनाकार ठेठ तमिलभाषी, तमिलनाडु निवासी थे। उन ग्रंथों में ''भारत राष्ट्र' का नामोल्लेख न होने पर भी, उत्तर भारतीय महानगरों, राज्यों, राजाओं, शासकीय प्रधानों का वर्णन है, जिसका मूल स्वर भक्ति, आस्था के हैं।

इस काव्य काल के अंतिम चरण में, रामकथा महाकाव्य (कम्ब रामायण), महाभारत कथा (पेरूंतेवनार भारतम्, विचंडीपुत्तूरार भारतम्), नैषध कावियम् नलचरिम्, कंद पुराणाम्, पेरिय पुराणम् आदि अनुवाद-प्रधान स्वतंत्र काव्य रचे गए। इनमें भारतीयता की परिकल्पना उभर आई हैं भले ही राष्ट्रभक्ति से प्रेरित न हों, फिर भी पात्रों, घटनाओं, धार्मिक आस्थाओं के समान, ये उत्तर भारतीय प्रदेश भी भक्ति-श्रद्धा के अवलंबन बने हुए थे।

इनके बाद आते हैं शैव, वैष्णव संत कवियों द्वारा विरचित भक्तिपुंज मधुर गीतिकाव्य। ये 'तिरूपुरै' (शैव), दिव्य प्रबंधम् (वैष्णव) के नाम से विख्यात हैं। ये संस्कृत के शैव और वैष्णव पुराणों के आधार पर विरचित स्वतंत्र रचनाएँ हैं। इन भक्ति-प्रधान प्रबंधों में पवित्र तीर्थधामों के रूप में भारत के विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन किया गया है, विशेषकर वैष्णव संत साहित्य 'दिव्यप्रबंधम्' में, जो ई० सातवीं से नौवीं शती के बारह आठबारों (संत कवि) द्वारा प्रणीत चार हज़ार भक्तिपुंज गीतों का समाहार है, एक सौ आठ 'दिव्य देश' (तीर्थधाम) श्रद्धापूर्वक वर्णित किए हैं इनमें से अधिकांश दक्षिण भारत के हैं। उत्तर भारत के दिव्यदेशों के रूप में-अयोध्या, नैमिशारण्य, नंदप्रयाग (जोशीमठ), देवप्रयाग, बद्रीनाथ, सालग्राम, मथुरा, वृंदावन, गोवर्धन, गोकुल, द्वारका- इन क्षेत्रधामों का विशद वैभवगान किया गया है-163 गीतों में। वैष्णवभक्त नौवीं शती से 'दिव्यदेश यात्रा' के रूप में उन क्षेत्रधामों की तीर्थयात्रा भक्ति-श्रद्धापूर्वक करते आ रहे हैं भारत राष्ट्र के प्रति आस्था इनमें भरपूर थी।

आदिकवि बाल्मीकि के रामायण के श्रीराम का यह उद्गार-''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' कम्ब रामायण में भी व्यक्त किया गया है।

काव्यकाल के उपरांत (12वीं शती से 17वीं शती तक) प्रशस्ति ग्रंथकाल में- लक्षणग्रंथ, व्याकरणग्रंथ, निघंटु (कोश), प्रबंधकाव्य, प्रशस्ति काव्य, क्षेत्र पुराण, भक्ति-धर्म प्रधान पद्यमालाएँ, आदि अधिक संख्या में रचित हुए। चौदहवीं शती के प्रारंभिक चरण में विदेशी, विधर्मी मुसलमानों का आक्रमण शुरू हुआ, सुलतानों की सल्तनत कुछ साल तक दक्षिण में-तमिलनाडु में भी क़ायम हुई। इनके विरोध में देशी राजाओं, सामंतों, आँध्र के पल्लव-नायक शासकों, मराठा अधिनायकों ने निरंतर युद्ध किए और मुसलमानों की हुकूमत तोड़ दी। आखिरकार सत्रहवीं-अठारहवीं शती में यूरोपीय वणिक और मिशिनरी दलों ने मुस्लिम हुकूमत हटाई, अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधियों ने पूरे भारत पर अपना अधिकार जमा लिया और अँग्रेज़ी राज में 'भारत राष्ट्र' रूपायित हुआ। परतंत्र भारत में स्वतंत्रता और स्वराज की चेतना जाग उठी। इस कालखंड में स्वदेश-भक्ति, राष्ट्रबोध, स्वतंत्रता, स्वधर्म, स्वभाषा, स्वकीय संस्कृति-परंपरा के प्रति आस्था-आतुरता जाग्रत हुई। यह पूरे भारत में फैले-बढ़े नवोन्मेष का जबर्दस्त दौर था। इस नवोन्मेष ने भारतीय जनमानस को, जनवाणी को, साहित्य चेतना को प्रभावित किया।

ई० 1600 में ब्रिटिश राजधानी लंदन में संस्थापित ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, जो वाणिजय-व्यापार की प्रबल संस्था थी, ई० 1612 में भारत आई। गुजरात के सूरतनगर में पहला पड़ाव-वाणिज्य केंद्र जमाया। ई० 1647 तक भारत विभिन्न नगरों (राज्यों) में 23 केंद्र खोल दिए गए। ताक़तवर फ़ौजी छावनी हर वाणिजय केंद्र में शुरू से ही थी। माल-असबाब के साथ फ़ौजी ताकत का भी विनियोग चलता था। प्रतिफल में भारत के क्षेत्र, नगर, राज्य हथिया लिए गए। ई० 1775 तक पूरा भारत ब्रिटिश सरकार के अधीन पराधीन उपनिवेश बन गया।

ब्रिटिश कंपनी के पहले भारत आई यूरोपीय वाणिज्य-कंपनियाँ थीं- पोर्टुगीज कंपनी (ई० 1498), डच कंपनी (ई० 1602), फ्रान्सीसी कंपनी (ई० 1664), डेनीश कंपनी (ई० 1755)। इन सबको पछाड़कर ब्रिटिश कंपनी सरकार ने भारत में जड़ जमा दी, बहुत मजबूत हुई। इसमें ईसाई मिशनरियों की भूमिका प्रमुख प्रभावशाली थी।

अँग्रेज़ सरकार द्वारा भारत के प्रमुख महानगरों में अपनी सुविधा के लिए छापाख़ाने (प्रेस) खोले गए- ई० 1674 में मुंबई में, ई० 1772 में मद्रास में, ई० 1779 में कोलकाता में छपाई का प्रचार-प्रसार फैला। भारतीयों के द्वारा भी प्रेस खोले गए। पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, रपटें, परिपत्र आदि छपने लगे।

शिक्षा-विधि विशेषज्ञ मैकाले कंपनी सरकार के सलाहकार, प्रशासन-समिति के सदस्य थे (1834-1838)। आपने ई० 1835 में भारत में अँग्रेज़ी शिक्षा-संबंधी अनुशंसा पेश की। तदनुसार भारत के सभी सरकारी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी बन गई और पूर्ववर्ती संस्कृत, अरबी की पढ़ाई बंद कर दी गई। राजाराम मोहन राय ने अँग्रेजी के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान की नवीनतम जानकारी भारतीयों को देने की अपील गवर्नर जनरल लार्ड आमहर्स्ट से पत्र द्वारा की थी। 11-11-1823 में, इस प्रार्थना को कार्यान्वित किया मैकाले की सिफ़ारिश

ने। अँग्रेजी शिक्षा के बढ़ने से भारतीय बुद्धिजीवियों में, शिक्षित वर्ग में भारतीय राष्ट्रीय चेतना, स्वराज कामना, देशभक्ति भावना जाग्रत हुई। उनके द्वारा सामान्य जनसमुदाय में भी वे चेतना, कामना और भावनाएँ फैलने लगीं।

विदेशी विधर्मी अँग्रेज़ी राजसत्ता के विरुद्ध अठारहवीं शती में पराधीन भारत के छोटे-बड़े राजा-रजवाड़े, सामंत, क्षेत्रपाल, रईस लोगों ने लगातार युद्ध किए, बुरी तरह हार गए। इनके मन में राष्ट्रभक्ति नहीं थी, अपने देश-प्रदेश-क्षेत्र की सत्ता लिप्सा थी। यहाँ के प्रजाजनों में भी यह प्रवृत्ति रही। अपवाद-स्वरूप, महाराणा प्रताप, झाँसी की रानी, छत्रपति शिवाजी, टिप्पू सुल्तान, वीर पांडिय कट्ट वोम्मन आदि स्वातंत्र्य-समर के स्वाभिमानी वीर पुरुषों की संघर्षगाथाएँ आगे चलकर भारतीय राष्ट्र-चेतना जगाने में प्रबल, प्रेरक रही हैं।

सन् 1885 में शुरू की गई इंडियन नेशनल काँग्रेस के प्रभाव से भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना जो पहले प्रतिबद्ध बुद्धिजीवियों की भावना थी, आम जनता में भी फैलाने लगी।

काँग्रेस महासभा की स्थापना (1885) के पहले कुछ सहयोगी संस्थाएँ शुरू की गईं, जो सत्ता और जनता के बीच में राजनीतिक सौजन्य बढ़ाने, स्वदेशी भावना को बल देने में लगी थीं; इनमें प्रमुख हैं- कोलकाता की ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन (1851), कोलकाता इंडियन एसोसिएशन (1876), मुंबई की बांबे एसोसिएशन (1852), पूना की सार्वजनिक सभा (1870), चेन्नई की मद्रास नेटिव एसोसिएशन (1852), चेन्नई महाजन सभा (1884)। इनके कार्यक्रमों में राष्ट्रीय एकता और स्वदेशी चेतना को सार्वजनिक बनाने के प्रयास प्रमुख थे।

इस ज़माने में राष्ट्रभक्त भारतीयों द्वारा शुरू किए गए स्वदेशी और राष्ट्रीय विचारधारा के पत्र-पत्रिकाओं की प्रभावशाली भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। इनमें प्रमुख हैं– कोलकाता की 'ब्राह्मनिकल मेगज़ीन' (1821-1823- राजा राममोहन राय का), 'अमृतबाज़ार पत्रिका' (1868), मद्रास (चेन्नई) का 'हिन्दू' (भारतीय के अर्थ में-1878), इंडियन एक्सप्रेस (1932) अँग्रेज़ी के थे।

तमिल पत्र-पत्रिकाओं में उल्लेखनीय हैं-'सुदेशाभिमानी' (1877), 'सर्वजन मित्रन्' (1899), सुदेश मित्रन् (1882), 'तमिल नेशनल पत्रिका' (1907), 'वन्दे मातरम्' (1907), 'इंडिया' (1906), 'देशभक्तन' (1918), 'तमिलनाडु' (1919), 'नवशक्ति' (1920), 'लोकोपकारी' (1895), 'दिनमणि' (1934), 'स्वतंत्र शंखु' (1930), 'विमोचनम्' (संपादक-प्रकाशक राजा जी-1929) आदि पत्र-पत्रिकाएँ नैतिक मूल्यों, जीवन-लक्ष्यों, समाज-सुधार के साथ, राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रमुक्ति और राष्ट्रशक्ति के कर्णधार थे।

आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, विवेकानंद की दक्षिण यात्रा और थियोसोफिकल आंदोलन ने भी धर्म-प्रवण, प्रबुद्ध भारतीयों में- विशेषकर दक्षिण-भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना और स्वराज भावना बढ़ाने में सहयोगी भूमिका निभाई, इस दिशा में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक द्वारा प्रवर्तित गणपति महोत्सव, शिवाजी महोत्सव, स्वदेशी अभियान (स्वभाषा, स्वधर्म और स्वराज्य- ई० 1894-1897) दक्षिण भारतीयों को भी प्रेरित-प्रभावित करता रहा।

ई० 1772 में बंगाल के जिगरे संप्रदाय के सन्यासियों ने ब्रिटिश तानाशाही के ख़िलाफ़ बग़ावत की, पुरज़ोर हमले किए, उस शौर्यपूर्ण विद्रोह को आधार बनाकर साहित्यशिल्पी बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 1881 में 'आनन्दमठ' उपन्यास लिखा उसमें जीव नाद की तरह 'वंदेमातरम्' गीत का समावेश किया, जो मातृभूमि की गरिमा-महिमा का गुणगान हैं। आगे चलकर भारतीय काँग्रेस महासभा के सन् 1896 के अधिवेशन में 'वंदे मातरम्' गीत को राष्ट्रगान के रूप में गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने गाया। तब से पूरे भारत में 'वंदे मातरम्' संजीवक महामंत्र के समान गूँज उठा, गूँजता ही रहा। इसे मूल, आधार स्वर बनाकर अनेकानेक राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय साहित्य, राष्ट्रीय उद्गार निकल आए, फैल गए, ये ही राष्ट्रभक्ति-साहित्य के उद्गम थे, उत्प्रेरक संबल थे।

इसी कालखण्ड में, तमिल के ठेठ राष्ट्रभक्ति-साहित्य के पुरोधा और कर्णधार थे स्वनामधन्य राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) इनके समान राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रमुक्ति और राष्ट्रोन्नति पर मनसा-वाचा-कर्मणा सेवानिरत साहित्यकार भारत-भर में शायद ही कोई पाया जा सके। सन् 1908-09 में भारती के 50 से अधिक 'स्वदेश' (राष्ट्रीय गीतों के संग्रह निकले, जिन्हें वे हर राष्ट्रीय आंदोलन की सभा में गाकर सुनाया करते थे। ये गीत भारतीय राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रगरिमा और राष्ट्रीय चैतन्य के प्रेरणापुंज हैं। इनकी अन्य पदयरचनाओं में भी-स्रोत गीत, ज्ञानबोधक गीत, नारी जागरण गीत, फुटकर गीत, आत्मकथागीत, कृष्णगीत, पंचालीशपथम, कोकिलगीत, प्रकृतिगीत आदि में- राष्ट्रभक्ति गूँज उठती है। दर्जनों गद्य रचनाएँ भी (कहानी, निबंध, विमर्श, अनुवाद, भाषण आदि उसी राष्ट्रीय चैतन्य के स्वरसंधान हैं।)

भारती 'इंडिया', 'विजया', 'सूर्योदय', कर्मयोगी (तमिल), 'बालभारत' (अँग्रेजी) पत्रिकाओं के सक्षम संपादक रहे। कई साल तक राष्ट्रीय तमिल दैनिक स्वदेश मिलन में सह-संपादक भी रहे। स्वतंत्रता-संग्राम में आजीवन सक्रिय भागीदार रहे।

भारती के स्वदेश (राष्ट्रीय) गीतों की कुछ बानगी

भारत देशम्

भारत देश नाम दयहारी
जन-जन इसको गाएँगे,

सब शपत्रुभाव मिट जाएँगे! ...
वंदे मातरम्
एक साथ सब मिलकर बोलें-
जय, जय वंदे मातरम्! ...
ब्राह्मण हों, या अब्राह्मण हों,
भारत माँ के लाल सभी,
ऊँच-नीच का भेद भूलकर
रहें सदा खुशहाल सभी ...
भारत माता की ध्वजा
देश-दिवानो! दर्शन कर लो
सविनय अभिनंदन कर लो,
मेरी माँ की दिव्य ध्वजा का
बार-बार वंदन कर लो! ...

भारती के पहले, समकाल में और परवर्ती समय में राष्ट्रभक्ति साहित्य के रचनाकार हुए हैं। पर वे भारती की तरह लोकप्रियता, लोकसमादर के पात्र नहीं बन सके और भारती के समान राष्ट्रोन्मुख साहित्य और समाज के समर्पित रचनाकार नहीं रहे। फिर भी भारती के समकालीन और परवर्ती साहित्यकारों की राष्ट्रीय चेतना भरी सेवाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं।

महेश कुमार शर्मा ने 1908 में बंकिम बाबू के आनंदमठ उपन्यास को तमिल में अनूदित किया। ये भारती के सहयोगी मित्र थे। व०वे०सु० ऐयर ने कुछ राष्ट्र चेतना भरी कविताएँ, समाज सुधारक कहानियाँ, स्वतंत्रता संग्राम को बल देने वाले निबंध, प्रमुख तमिल साहित्य-ग्रंथों के अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ, पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अच्छी सेवा की हैं (1910-1920), संत रामलिंग स्वामी (1823-1876) ने धर्म-भक्ति परक गीत प्रबंध लिखे हैं। समाज सुधारक, राष्ट्रसेवा पर भी आपकी कविताएँ, लेख आदि प्रकाशित हुए हैं।

भारती के समकालीन माधवैया का प्रसिद्ध गीतसंकलन है 'इंदिम कुम्भि' भारत माता पर गाए 51 गीतों का समाहार। भारती के परवर्ती कवियों में नामक्कल रामलिंगम पिल्लै, (1888-1972), कविमणि देशिक विनायकम पिल्ले (1876-1952), शुद्धानंद भारती (1897-1964) कवयित्री अचलाम्बिका, 'तिलक गाँधी प्रशास्ति गीत' राय चोक्क लिगम, (गाँधी पुराणम), कोत्तमंगलम सुब्बु (गाँधी महान की गाथा), भारती दासन (1891-1964) की राष्ट्रोत्थान की ओजस्वी कविताएँ, स०दु०सु० योगी की राष्ट्रवादी कविताएँ, कण्णदासन की राष्ट्रवंदना, राष्ट्रीय नेताओं की वंदना की कविताएँ, विशेष उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रीय उद्‌बोधक उपन्यास साहित्य का अच्छा विकास हुआ है। इस क्षेत्र में प्रशस्त उपन्यासकार का०शी० बेंकटरमणि का देशभक्तन, कल्कि कृष्णमूर्ति के 'मकुटपति', त्यागभूमि 'अलै ओसे', वा० रामस्वामी का 'सुंदरी', टी०एस० चोक्कलिंगम का भाई परधायन, योगी शुद्धानंद भारती का 'अन्बु निलैयम्', एस० सीता रामैया का 'काट्टूर रामु', शाण्डिलयन का 'बलात्कारम', कु० राजलु का 'सन् 1942', रा०सु० नलल पेरुमाल का कललुक्कुल ईरवे, न० चिंदबर सुब्रह्मण्यम का 'मणाणिल, तेरियुदु वानम', ना० पार्थसारथी का 'आत्मा विनेरागंगल्'। एम०एम० कल्याणसुंदरम का 'इसपदु वरूडंगल', कि० राजनारायण का 'गोपललपुरत्रु', मक्कल'। ज्योतिर्लता गिरिजा का तामिन् 'मणिक्कोडि', आदि, ये सब सन् 1880 से 1990 तक के काल में प्रकाशित हुए हैं।

इसी प्रकार राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रमुक्ति परक कहानियाँ भी इसी दर्मियान खूब निकली हैं। ई० 1920 से 1935 तक कई राष्ट्रोन्मुखी, राष्ट्रभक्ति वर्धक नाटक मंचित हुए हैं। इनमें 'खद्दर भक्ति', 'देशीय कोडि', 'यति भक्ति', 'खद्दर की विजय', 'पंजाब केसरी', 'कमल शेखरन', उल्लेखनीय हैं, टि०के० षणमुखम, एम०एस० मुत्तुष्णन, नटराज पिल्लै, के सारंगपाणी आदि नाटक-कलाकारों ने अनेक राष्ट्रीय महत्त्व के नाटकों को मंचित किया है, ये स्वतंत्रता-संग्राम में भागीदार भी रहे।

कोवै अरूयामुत्तु का 'इब्बसागरन्'। (1939) लोकप्रिय, प्रभावशाली राष्ट्रीयता-प्रेरक नाटक था। इसी प्रकार एस०डी० सुंदरम का 'कवियिन कनवु' (1945), प० नीलकंठन का 'नाम् इरुवर' (1946) विशेष महत्त्व के थे, लोकप्रिय थे।

साहित्य की अन्य विधाओं में भी इस कालखंड में राष्ट्रभक्ति प्रेरक छोटी-बड़ी रचनाएँ निकली हैं- जैसे कि फिल्में लोकगीत, नौटंकी, आदि।

संपर्क : चेन्नई, तमिलनाडु

"विचार दृष्टि" के 11वें वर्ष में प्रवेश के लिए इसके
अप्रैल-जून 2009 के प्रकाशन पर हमारी शुभकामनाएँ
विनोद कुमार
मै. सन्तोष सीमेन्ट
खगौल रोड, मीठापुर, पटना-1

साहित्यिक पत्रिकाओं का अर्थशास्त्र

○ जितेन्द्र धीर

बौद्धिक चेतना संपन्न स्वस्थ समाज के निर्माण में साहित्य की अपनी विशिष्ट भूमिका है। इसकी सबसे बड़ी भूमिका मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने की रही है। मानवीय संवेदना को बचाए और जिलाए रखना साहित्य का यही धर्म रहा है और आज भी है। साहित्य के इस धर्म को निबाहते हुए पाठकों में सांस्कृतिक चेतना के साथ समाज-बोध को समृद्ध करती साहित्यिक या लघुपत्रिकाओं का प्रकाशन अपने आप में एक बड़ी चुनौती है। चूँकि यह कार्य प्रकाशन से जुड़ा है जो अर्थ के बिना संभव नहीं इसलिए इसका सीधा संबंध अर्थशास्त्र से जुड़ जाता है।

साहित्यिक या लघुपत्रिकाओं के प्रकाशन में जो एक सबसे प्रमुख समस्या या बाधा है, वह है धन की। अर्थाभाव में प्रकाशन की निरंतरता संभव नहीं। यह स्थिति आज ही है, ऐसी बात नहीं। यह पहले भी रही है। इसका एक ही उदाहरण काफ़ी होगा। सन 1907 में, कोलकाता से मासिक पत्र 'नृसिंह' का प्रकाशन पंडित अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने किया था। इसके संपादक संचालक वे स्वयं ही थे। प्रकाशन संबंधी कठिनाई का ज़िक्र करते हुए उन्होंने लिखा है कि, 'रुपये का प्रबंध करना, पत्र के लिए काग़ज़ लाना, छपना, प्रूफ़ देखना और डिस्पैच करना मेरा ही काम था। इन सब कार्यों से मुझे जितना कष्ट नहीं हुआ उससे कहीं अधिक आर्थिक चिंता से रहा और आफ़त की मार कि आगे भी इस चिंता ने मेरा पिंड नहीं छोड़ा। पूँजी तो नहीं के बराबर ही थी इसलिए यह दो तीन अंकों के लिए भी यथेष्ट नहीं हुई। साहित्यिक वैचारिक या लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन के संबंध में सन् 1907 में कही गयी यह बात आज सौ वर्षों बाद भी अपनी जगह पूरी तरह सच है, जो वस्तु स्थिति को उजागर करती है।

साहित्यिक पत्रिकाओं या लघु पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या सीमित होती है। सर्कुलेशन या प्रसार संख्या कम होने से विज्ञापन के रूप में यथेष्ट आर्थिक सहयोग नहीं मिल पाता। किसी तरह जोड़-जुगत बिठाकर या स्वयं अपने पैसे से या दोस्त-मित्रों की मदद से कुछ अंक निकलने के बाद या तो वह पत्रिका अनियतकालीन हो जाती है या फिर बंद। इस प्रकार की अधिकांश पत्रिकाएँ रचनाकारों के अपने निजी प्रयासों की उपज होती हैं पत्रिका के संपादक, संचालक, प्रकाशक सब कुछ वे स्वयं ही होते हैं सारी कठिनाइयों के बावजूद लघु पत्रिकाओं या साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद नहीं हुआ है इनका प्रकाशन हो रहा है। बड़े प्रतिष्ठानों या सरकारी प्रतिष्ठानों से निकलने वाली पत्रिकाओं की तुलना में इनका महत्त्व कहीं अधिक है

'धर्मयुग' के संपादक डॉ० धर्मवीर भारती के शब्दों में, 'विविधलक्षी लोकप्रिय पत्रिकाएँ साहित्य लक्षी पत्रिकाओं की सहायक और पूरक हो सकती हैं, लेकिन उनकी स्थानापन्न कभी नहीं हो सकती। नए लेखकों, और नयी कथा, काव्य-समीक्षा धाराओं के विकास में ये साहित्यलक्षी पत्रिकाएँ ही महत्त्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका अदा करती हैं, बशर्ते ये अपने साहित्यिक मानदंडों पर निष्ठापूर्वक स्थिर रहें। निश्चित रूप से किसी भी साहित्यिक या लघु-पत्रिका के संपादक के लिए यह एक बड़ी चुनौती है। विशेषकर इन दिनों, जबकि व्यवसायिकता हर चीज़ पर हावी है। उपयोगिता और लाभ के नज़रिये से सब कुछ जाँचा परखा जा रहा है। ग़ौरतलब है, साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्मयुग, दिनमान जैसी पत्रिकाएँ धनाभाव के चलते बंद नहीं हुई। इनका अपना एक पाठक वर्ग था। इनके बंद होने का कारण सीधा और साफ़ था इनके मालिकों की दृष्टि में यह विशेष लाभ देने वाला उपक्रम नहीं रह गया था।

इसके बरअक्स आज भी इस देश में अकेले हिंदी में हज़ारों ऐसी पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है, जिन्हें हम साहित्यिक या लघुपत्रिका कहते हैं। आर्थिक दृष्टि से सुविधा-संपन्न न होने के बावजूद ये पत्रिकाएँ अनियमित ही सही मगर निकल रही हैं। यहाँ हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि लघुपत्रिकाओं का प्रकाशन एक विशिष्ट संदर्भ में आंदोलन का रूप लिए प्रतिपक्ष का स्वर बन कर उभरा था। जो कई कारणों से अपने उस तेवर को बरकरार नहीं रख सका। कईयों ने 'लघुपत्रिका' को बहुत हल्के ढंग से लिया और आज इसे उस मंज़िल तक पहुँचा दिया जहाँ पहुँचकर यह सोचना पड़ता है कि कहीं ये पत्रिका संपादक या संपादक मंडली द्वारा साहित्यिकों या संपादकों की जमात में अपना भी नाम दर्ज़ कराने की कोशिश भर ही बन कर तो नहीं रह गयी है। वैसे यह बात सभी लघुपत्रिकाओं, वैचारिक या साहित्यिक पत्रिओं पर लागू नहीं होती।

बड़े प्रतिष्ठानों से प्रकाशित होने वाली साहित्यिक पत्रिकाओं की निरंतरता कमोबेश बनी हुई है। उनके पास संसाधन व धन की कमी नहीं। निजी प्रयासों से निकलने वाली पत्रिकाओं के सामने कई तरह के संकट हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का बढ़ता वर्चस्व, प्रिंट मीडिया का बदलता चरित्र, कॉरपोरेट-कल्चर से उपजी नयी सोच का गहरा असर आज के मनुष्य विशेषकर नई पीढ़ी पर पड़ा है। चमक-दमक, ताम-झाम, उत्तेजना

और सनसनी की मानसिकता वाली आज की किशोर और युवा पीढ़ी साहित्य पढ़ कर क्या होगा? इससे क्या मिलेगा? जैसे निषेधात्मक निष्कर्षों में जी रही है। समाचार पत्रिका, सिने-पत्रिका, शेयर बाज़ार, बिजनेस मैगज़ीन, बहुद्देशीय आर्ट पेपर छपी, तड़क-भड़क, सज-धज के साथ प्रकाशित हो रही व्यवसायिक पत्रिकाओं के इस दौर में साहित्यिक या लघुपत्रिका निकालना आसान काम नहीं। अगर हमें इनके प्रकाशन की निरंतरता बनाएँ रखनी है तो उसे इस स्थिति तक पहुँचना होगा जिससे वह आगामी अंक के प्रकाशन और वितरण के लिए आवश्यक धन जुटा सके। इसके लिए व्यवसाय करना होगा। 'व्यवसाय' शब्द से भड़क जाने की ज़रूरत नहीं। साहित्यिक या लघुपत्रिका और उससे जुड़े ज़रूरी-व्यवसाय के अंर्तसंबंध को जानना होगा। समझना होगा। इस पर विचार करना होगा।

गौरतलव है, पत्रिका छोटी हो या बड़ी जब तक पत्रिका के उत्पादन में किसी न किसी रूप में किसी न किसी का पैसा लगता है और छपने के बाद पत्रिका को बेच कर पूर्ण या आंशिक रूप में वापस वसूलने की अनिवार्यता है, तब तक व्यवसाय किसी न किसी रूप से उस पत्रिका से जुड़ा होता है। जिस पत्रिका की परिधि और उत्पादन जितना छोटा था बड़ा होता है, उससे जुड़ा रहने वाला व्यवसाय भी उसी अनुपात में छोटा या बड़ा हो सकता है। दोनों ही स्तरों पर व्यवसाय की अपनी शर्तें, अपनी सीमाएँ, अपनी सुविधाएँ हो सकती हैं अब यहीं पर एक साहित्यिक निष्ठा वाले सम्पादक के लिए वास्तविक चुनौती आती है। वह अपने मूल मंतव्यवाली साहित्यिक चेतना में क्रांति या विकास को सर्वोपरि रखकर माध्यम या व्यवसाय का सही उपयोग कर ले जाता है या माध्यम के प्रति या तो अव्यवहारिकता या केवल आर्थिक लाभ का दृष्टिकोण अपना कर अपने मूल बिन्दु से अपदस्थ हो जाता है। छोटी या बड़ी पत्रिका के छोटे या बड़े व्यवसाय के माध्यम को अपने मंतव्य के लिए सही उपयोग करना ही उस चुनौती को सही रूप में स्वीकारना है। व्यवसाय तो हर हालत में अनिवार्य है, लेकिन व्यवसाय अनिवार्यतः व्यावसायिकता नहीं। व्यवसायिकता तब आती है जब हम साहित्यिक संस्कार की उपेक्षा कर दें। इस दृष्टि से देखे जाने पर स्पष्ट है कि, साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन किसी के लिए भी एक गंभीर चुनौती भरा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। विशेषतया कॉरपोरेट-कल्चर के इस दौर में जबकि साहित्य बहुतों को अप्रासंगिक सा लगने लगा हो और साहित्य के भविष्य को लेकर सवाल उठाए जाने लगे हों।

साहित्यिक पत्रिकाओं के अर्थशास्त्र की दृष्टि से सबसे बड़ा महत्त्व उसके पाठक वर्ग का है, जिनकी संख्या घटती जा रही है। पाठकों के अभाव में गंगा सारिका, कहानी जैसी पत्रिकाएँ बंद हुईं। हंस (संपादक राजेन्द्र यादव), समयांतर (संपादक पंकज विष्ट) जैसी साहित्यिक और वैचारिक पत्रिकाएँ आर्थिक संकट से जूझ रही हैं। बड़ी साहित्यिक पत्रिकाओं के अलावा कई ऐसी अन्य पत्रिकाएँ हैं, जो या तो बंद हो गयी हैं या बंद होने के कगार पर हैं। हिंदी के पाठकों में क्रयशक्ति और अभिरूचि दोनों का अभाव नज़र आता है। सुविधा-संपन्न और मध्यम वर्गीय हिंदी भाषी व्यक्ति अँग्रेज़ी-हिंदी की चटखारेदार सामग्री, रंगीन सज-धज वाली पत्रिका ख़रीदने में नहीं हिचकिचाता लेकिन जब बात साहित्यिक पत्रिका की हो तो वह नाक-भौं सिकोड़ता है और इसे न ख़रीदने के अपने तर्क देता है। हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं के पाठकों का एक दूसरा वर्ग ऐसा है जो इन्हें पढ़ना तो चाहता है लेकिन उनमें क्रय-शक्ति का अभाव है। कुल मिलाकर यह एक निराशाजनक स्थिति है बावजूद इसके सुखद यह है कि, अपनी धुन के पक्के, सारी असुविधाओं को झेल कर, बाज़ारवाद के तमाम दबावों से विचलित हुए बिना ऐसे प्रतिबद्ध रचनाकारों, संपादकों की कमी नहीं है, जो साहित्यिक या लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन में हुटे हैं। मनुष्यता को बचाने और संवारने के लिए अमानवीयता के त्रासद अंधकार से जूझ रहे हैं।

संपर्क : गार्डन रीच, कोलकाता, पं० बंगाल

"विचार दृष्टि" के 11वें वर्ष में प्रवेश के लिए इसके

अप्रैल-जून 2009 के प्रकाशन पर हमारी शुभकामनाएँ

बी. एस. शांताबाई

अध्यक्ष, राष्ट्रीय विचार मंच सह-ब्यूरो प्रमुख, विचार दृष्टि, कर्नाटक

अध्यक्ष, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, चामराज पेट, बैंगलुरु (कर्नाटक)

भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत उपेक्षित क्यों?

❍ डॉ० गिरीन्द्र नाथ झा

संस्कृत भारत की मूलभूत एवं समृद्ध भाषा है। भारोपीय भाषा परिवार संसार का सबसे वृहत परिवार है, जिसकी मुख्य भाषा संस्कृत है। इस परिवार की प्राचीन भाषाओं में ग्रीक, लैटिन, स्लावोनिक का संस्कृत से घनिष्ठ संबंध है। विश्व की दस हज़ार जीवंत भाषाओं में संस्कृत, मंडारिन (चीनी) और इरवानी प्राचीनतम भाषाएँ हैं। संस्कृत प्राचीन काल में भारत की बोलचाल की भाषा यानी मातृभाषा तथा राजभाषा के पद पर आसीन रही, जिसे कतिपय साक्ष्यों के आधार पर भारतीय विद्वानों के साथ-साथ पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी है। मलयालम, कन्नड़ एवं तेलुगु के शब्द भण्डार में पचास से अस्सी प्रतिशत तक शब्द संस्कृत के ही हैं। हिंदी, मैथिली, बंगला, मध्य हिमालय में बोली जाने वाली 'चिनाली' आदि भाषाएँ संस्कृत से ही परिवर्द्धित एवं संबद्धित हुई हैं। यह केरल से कन्याकुमारी तक ही नहीं, यत्र-तत्र-सर्वत्र समान रूप से लिखी, पढ़ी और समझी जाती है, यही इसकी उपयोगिता एवं लोकप्रियता सिद्ध करती है। इतना ही नहीं, देश के किसी भी भू-भाग में संस्कृत के साथ भाषायी विवाद नहीं है, क्योंकि यह बौद्धिक जागरण का प्रतीक है। इसके माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति ही नहीं भौतिक प्रगति भी संभव है। संस्कृत कश्मीर से केरल और कामरूप से नेपाल तक एक जैसी बोली जाती है। इसका श्रेय महर्षि पाणिनि को है, जिन्होंने संस्कृत भाषा को सुसंबद्ध व्याकरण दिया। वस्तुतः पाणिनीय व्याकरण ने ही इस भाषा को हज़ारों वर्षों से नियंत्रित एवं सुरक्षित रखा है। पाणिनीय व्याकरण इस भाषा की रीढ़ है। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग, पाश्चात्य विद्वान् प्रो० मोनियर विलियम्स, सर डब्ल्यू०डब्ल्यू० हण्टर, रूसी विद्वान् प्रो० टी० शेखात्सकी, प्रो० मैक्समूलर प्रभृति विद्वानों ने पाणिनीय व्याकरण को मानव मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना, संससार के व्याकरणों में चोटी का व्याकरण तथा इंसानी दिमाग की सबसे बड़ी रचनाओं में से एक बताया। मैक्डोनल ने कहा है कि संस्कृत का व्याकरणशास्त्र विश्व में अनुपम है। वस्तुतः पाणिनीय व्याकरण भारतीय भाषाओं के लिए आदर्श एवं मार्ग-दर्शक है। किसी भी भाषा के विकास में संस्कृत व्याकरण का ज्ञान अपेक्षित है। संस्कृत व्याकरण के कारण ही संस्कृत भाषा आज भी जीवंत एवं लोकप्रिय है। कुछ अल्पज्ञ, जो इसकी उपयोगिता नहीं समझते, इसे व्याकरणिक भाषा की संज्ञा देते हैं। व्याकरण के ज्ञान के अभाव में ही शब्द गढ़ेताओं द्वारा अशुद्ध शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है।

संस्कृत व्याकरण वैज्ञानिक एवं अत्यधिक उपयोगी है। भारतीय आर्य भाषा के अध्येताओं के लिए संस्कृत भाषा निस्सन्देह मूल उत्स भूमि है, जिसके उद्गम स्रोत की प्रकृति को जाने बिना अग्रसर होना संभव नहीं है। भाषा शास्त्र के सामान्य नियमों के ज्ञान के लिए संस्कृत का परिचय आवश्यक है। भाषा शास्त्र के विकास का इतिहास संस्कृत के अध्ययन से अनुस्यूत रहा है, अतएव संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। वस्तुतः भाषा शास्त्र को जन्म देने का श्रेय संस्कृत को ही है। संस्कृत के परिचय ने ही यूरोप में भाषा विज्ञान को जन्म दिया। यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत को पाकर भाषा संबंधी पुराने यूरोपीय विचारों में एक आमूलचूल परिवर्त्तन कर दिया। यूरोपीय जगत् को संस्कृत का परिचय देने का श्रेय सर विलियम जॉन्स को हैं सन् 1796 में सर जॉन्स ने संस्कृत के विषय में जो शब्द कहे थे, वे आज भी तुलनात्मक भाषा शास्त्र के उदय के बीज माने जाते हैं- संस्कृत भाषा की पद रचना अत्यधिक अद्भुत है, चाहे उसका मूल उद्गम कुछ भी रहा हो। यह भाषा ग्रीक से भी अधिक पूर्ण, लैटिन से अधिक समृद्ध तथा दोनों से अधिक परिष्कृत है।

प्राचीन काल से 19 वीं शताब्दी पर्यन्त के उपलब्ध दान पत्र, राजकीय-शासन पत्र शिलालेख, स्तम्भाभिलेख, मुद्रालेख व अन्य प्रशस्तियों की भाषा संस्कृत ही है। बौद्धों एवं जैनों के अधिकांश ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही रचित मिलते हैं। सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग अपनी सातवीं शताब्दी के भारत भ्रमण काल में बौद्धों द्वारा प्रयुक्त संस्कृत भाषा का उल्लेख किया है। बौद्ध धर्म के प्रचारक एवं दार्शनिक अश्वघोष ने संस्कृत भाषा में ही प्रचार-प्रसार किया। 9वीं शताब्दी के जैन कवि सिद्धर्षि ने भी 'उपमिति भाव प्रपंच कथा' नामक जैन ग्रंथ संस्कृत में लिखा।' विक्रमांक देव चरित' में कश्मीरी कवि विल्हण ने लिखा है कि कश्मीरी स्त्रियाँ संस्कृत, प्राकृत और कश्मीरी भाषा को अच्छी तरह समझती थीं। रहीम कवि को अरबी हो या संस्कृत दोनों पर समान अधिकार था। उन्होंने संस्कृत में 'खेट कौतुक जातकम्' नामक ग्रंथ लिखा और माना जाता है कि 'रास पंचाध्यायी' भी उनकी रचना है। केरल के पी०सी० देवसिया ने ईसा की जीवनी' क्रस्तु भागवतम् नाम से संस्कृत में लिखा। इंगलैंड के नार्थम्पटन शायर निवासी प्रो० विलियम केरी ने 1808 ई० में बाइबल का अनुवाद संस्कृत भाषा में किया। हिन्देशिया, लाओस, थाइलैंड आदि देशों में संस्कृत की परम्परा रही है। कम्बोडिया देश में संस्कृत आठवीं शताब्दी तक राजभाषा रही। जापान के दस विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता है। भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत हज़ारों वर्षों से आज तक अक्षुण्ण रही है, लेकिन अपने ही देश में इसे 'मृत भाषा' कहकर अव्यवहारिक सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है। जबकि अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र नासा (अमेरिका) के वैज्ञानिक डॉ० रिक बिक ने शोधोपरांत संस्कृत को कम्प्यूटर हेतु सहज एवं उपयोगी सिद्ध किया है। इतना ही नहीं, हाल में अमेरिका के विश्वविद्यालयों में 'गीता' का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया है। प्रबंधन, वास्तु शास्त्र, ज्योतिष आदि आधुनिक बिषयों के रूप में पाश्चात्य देशों में इसका प्रचलन हो रहा है। त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत को उचित स्थान दिया जाय। माध्यमिक स्तर तक संस्कृत को अनिवार्य विषय बनाया जाय। संस्कृत शिक्षा का प्रचार-प्रसार में सरकार की ओर से पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जाय।

संपर्क : संस्कृत विभागाध्यक्ष
डी०बी०के०एन०कॉलेज, नरहन
समस्तीपुर

शुक्ला चौधरी की दो लघुकथाएँ

छोटी बहू

''इतनी मुश्किल से बेटे को पढ़ाया लिखाया, बैंगलूरु के सबसे नामी-दामी कॉलेज में मैनेजमेंट पढ़ाने भेजा, वहाँ से इस मद्रासन को बीबी बना लाया, ना ढंग के कपड़े पहनने की सहूलियत, ना रसोई का ज्ञान, हर भोजन में खटाई डाल दिया बस हो गया और तो और क्या हिंदी बोलती है, कुछ समझ नहीं आता ऊपर से कौए जैसा रंग। मेरी तो नाक कट गई बिरादरी में।''

''पर मिसेस अग्रवाल तुम्हारी छोटी बहू के नाक नक्शे तो बड़े सुंदर है। सुना है भरतनट्यम् भी अच्छा नाचती है।''

''तो मुझे क्या डान्सिंग स्कूल खोलना है घर में? वैसे ही शाम होते ही एक दर्जन फूल चढ़ा लेती थी बालों में। मैंने वो सब भी रोक दिया। वैसे रंग साफ ना हो तो कुछ नहीं जँचता। मेरी बड़ी और मझली बहू को देखो तो जो पहने उसी में अप्सरा दिखती है और अपनी बिरादरी की भी है।''

इतने में छोटी बहू सास की सहेलियों के लिए चाय नाश्ता ले आई। बड़ी बहू को पूजा पाठ और बच्चों से फुर्सत नहीं थी और मझली अपनी अलग बुटिक चलाती थी, पर सास की आँखो पर तो प्रांतीयतावाद का पर्दा पड़ा था, उसने व्यंग्य बाण छोड़े-''कही चाय में भी तो खटाई नहीं डाल लाई ना।'' शर्म और अपमान से सिर झुकाकर वो चली आई। दिन-रात के इन तानों को उसने अपने मुहब्बत के ख़ातिर स्वीकार कर लिया था। बैसे तो मनोज से शादी का फैसला करते वक़्त उसके डॉक्टर पिता ने उसे बार-बार चेतावनी दी थी पर उसे क्या मालूम था कि हालात इतने कड़वे हो सकते हैं।

ख़ैर, विधि का विधान देखिए कि जिस दिन मझले बेटे-बहू ने अलग फ्लैट लेने का फैसला सुनाया, मिसेस अग्रवाल को लकवा मार गया और उसी दिन से छोटी बहू पूरी निष्ठा से उनके सेवा में जुट गई।

बिस्तर पर लेटे-लेटे अब मिसेस आग्रवाल के बहते आँसू उन्हे समझा रहे थे कि बहू चाहे जिस किसी प्रदेश की हो अगर उसमें गुरुजनों के प्रति सम्मान और सेवाभाव है तो वही घर को स्वर्ग बना सकती है।

मंत्री जी

''हैलो, क्या मैं मोहिनी बिटिया से बात कर सकता हूँ?''

''जी मैं बोल रही हूँ।''

''नमस्ते बिटिया, मैं विरोधी दल नेता शिव प्रसाद दयाल बोल रहा हूँ।''

''ओह! मैं आपसे बात नहीं करना चाहती थी।''

''क्यों?''

''क्योंकि आप जो कहेंगे वो मैं नहीं मान सकती। आपके बेटे शेखर प्रसाद ने मेरे साथ बीच चौराहे पर बलात्कार किया जिसकी वजह से मेरी हँसती-खेलती जिंदगी उजड़ गई, मेरा कॉलेज जाना बंद हो गया। मेरा परिवार मुँह छिपाकर जिंदगी गुजार रहा है, लोगों के व्यंग्य बाण और तानों से जर्जर हैं हम, मेरी शादी और बहन की मंगनी टूट गई, उसे तो मैं नहीं छोडूँगी। अदालत तक घसीट कर ले जाऊँगी। मुझे कोई नहीं रोक सकता, आप भी नहीं। नारी समिति भी मेरे साथ है। मुझे बदनाम करने वाले को मैं बदनाम करके ही दम लूँगी।''

''हाँ-हाँ बेटी, मैं भी तो यही चाहता हूँ।''

''क्या? पर आप तो उसके पिता हैं।''

''हाँ, हूँ, पर उससे पहले मैं एक नेता हूँ। पिछले दो-दो बार मैं थोड़े-थोड़े वोटों के लिए चुनाव जीत ना सका, पर इस बार ज़रूर ये कसर पूरी करूँगा। जिस चौराहे पर शेखर ने तुम्हारी इज्जत लूटी, उसी चौराहे पर एक शानदार मंच बनवाऊँगा, तुम्हें एक सिंहासन पर बिठाकर शेखर को तुमसे माफी मंगवाऊँगा और अपने हाथों से वही पुलिस के हवाले करूँगा।''

''पर आप ये सब क्यों करेंगे?''

''करना ही पड़ेगा। चुनाव जीतने का ये अवसर मैं किसी भी हालत में नहीं गँवा सकता। अगर मैंने ऐसा नहीं किया, तो मेरे विरोधी मुझे हमेशा के लिए खत्म कर देंगे। मंत्री बनने का मेरा सपना अधूरा रह जाएगा। सिमपेथी वोट में गजब की शक्ति है। मेरा आदमी तारीख वगैरह तय करने तुम्हारे घर पहुँच जाएगा। इस बीच तुम किसी भी दूसरे पार्टी के लोगों से बात नहीं करना।'' और खट् की आवाज से लाइन कट गई।

मोहिनी मूर्तिवत् बैठी सोचने लगी कि ये नेता और मंत्री लोग शायद किसी अलग प्रजाति के होते हैं-भावरहित-भावनारहित, निर्बंध-निर्मोही, सिर्फ-सिद्धि के लिए जीने वाले- जैसे किसी दूर ग्रह के वासी।

भय (पंजाबी कथा)

कथाकार : जगदीश राय कुलरिया

अनुवादक : डॉ० रामनिवास 'मानव'

आज फिर शिंदो को उसके शराबी पति ने खूब मारा-पीटा था। शिंदो का पिटना आज कोई नई बात नहीं थी, यह तो उसके पति का नित्य कर्म था। रोज़ शाम के वक्त शराब पीकर आना और उसे बेरहमी से पीटना। शिंदो भी अब इस मार की अभ्यस्त हो गई थी, मगर आज तो उसके पति ने उसे पीटने की हद कर दी ... अगर पड़ोसी छुड़ाने न आते, तो उसके पति ने उसे जान से ही मार डाल होता।

शिंदो चारपाई पर लेटी सोच रही थी कि इसमें उसका क्या दोष, अगर उसने लड़का नहीं जना। एक के बाद एक लगातार तीन बेटियाँ भी तो भगवान का ही रूप हैं। उसका मन होता कि रोज़ के कलेश से तो अच्छा है, वह कहीं दूर भाग जाए या आत्महत्या कर ले, मगर वह अपनी तीनों बेटियों की ओर देखकर चुप हो जाती और मन में सोचती कि अगर उसने ऐसा कर लिया, तो बाद में लोग उसकी बेटियों को ताने देंगे और बुरा-भला कहा करेंगे, ''तुम्हारी माँ बदकार थी ... न जाने किस के साथ भाग गई ... जैसी माँ थी, वैसी ही बेटियाँ होंगी ... ये कौन-सा कम गुजारेंगी।''

शिंदो को यह भय पति की मार-पीट के भय से कहीं अधिक महसूस हो रहा था।

संपर्क : 46 इम्पलाइज कॉलोनी
बरेटा (मानसा) पंजाब
पिन-151501

डॉ० राम निवास 'मानव' की दो लघुकथाएँ

अल्टीमेटम

आज अल्टीमेटम का आख़िरी दिन था। अपहर्णकर्त्ताओं ने धमकी दी थी कि दस जून तक उनके साथी को जेल से रिहा नहीं किया गया, तो वे बंधक बनाए गए दो पर्यटका में से एक की हत्या कर देंगे। जब अपहर्णकर्त्ताओं की माँग सरकार द्वारा पूरी नहीं की गई, तो एक बंधक की आँखों पर पट्टी बांधकर तथा हथकड़ी-बेड़ी लगाकर गुप्त स्थान से बाहर लाया गया। उसे गोली मारी जाने वाली थी कि उसका साथी, दूसरा बंधक चिल्लाया- ''नहीं, इसे मत मारो; इसके बदले मुझे गोली मार दो!''

अपहर्णर्त्ता को आश्चर्य हुआ। 'लोगों के डर के मारे प्राण सूख जाते हैं, हर कोई, जैसे भी हो, बचकर भाग निकलना चाहता है, फिर यह मूर्ख दूसरे के लिए क्यों मरना चाहता है?' एकाएक एक प्रश्न उसके मन में उभरा, तो उसने जानना चाहा– ''क्यों यह तुम्हारा कुछ लगता है क्या, जो इसके बदले मरना चाहते हो?''

''नहीं, यह बात भी नहीं है''

''तो फिर?'' अपहर्णकर्त्ता का आश्चर्य और भी बढ़ गया था-

''फिर क्यों मरना चाहते हो?''

''इसलिए कि यह अपनी बूढ़ी विधवा माँ का इकलौता बेटा है, उसके गुढ़ापे का सहारा। यदि इसे कुछ हो गया, तो वह जीतेजी मर जाएगी; बेचारी।''

''लेकिन तुम मर गए, तो तुम्हारे माँ-बाप को कुछ नहीं होगा?''

''होगा तो अवश्य, लेकिन उन्हें संभालने वाले मेरे दो भाई और भी हैं।''

उसकी बात सुनकर अपहर्त्ता आँखें पोंछते हुए उसे लेकर अंदर चला गया।

सम्मान

''आजकल लोगों ने सम्मान करने को भी धंधा बना लिया है।'' कविवर 'पतंगा' कह रहे थे- ''अब मिश्रा को ही देखो, दिल्ली में तीन दिनों का सहस्राब्दी सम्मान-समारोह रख दिया। लोगों को मूर्ख बनाकर, पता नहीं कितना बनाए।''

सामने बैठे छुटभैए साहित्यकार 'हाँ-हूँ' कर रहे थे।

'पतंगा' जी फिर आगे बढ़े- ''लेकिन मुझे उसका दिया सम्मान इतना बुरा लगा कि मैं सम्मान-पत्र को रास्ते में ही फेंक आया।''

''ऐं, यह क्या कह रहे हैं?'' एक प्रश्न मेरे मन में उभरा था।

'पतंगा' जी का सम्मान, समारोह के पहले दिन था, तो मेरा दूसरे दिन। दूसरे दिन 'पतंगा' जी का सुबह-सुबह ही फोन आया था, पूछा था- ''दिल्ली सम्मान-समारोह में जा रहे हो?''

''हाँ।'' मैंने बताया था।

''कल मेरा सम्मान-पत्र कहीं रास्ते में गुम हो गया। अब मैं तो किसी को दिखाने लायक भी नहीं रहा। आप जा ही रहे हैं; मिश्रा जी से कहकर मेरे लिए दूसरा बनवा लाना, ज़रूर-ज़रूर। वह आपके अच्छे परिचित हैं; आप कहेंगे, तो बना भी देंगे।''

और मैंने बनवा भी लाया था। सम्मान- -पत्र पाकर 'पतंगा' जी बड़े प्रसन्न हुए थे- ''अब तो बनी न बात।''

वही 'पतंगा' जी आज यह क्या कह रहे हैं? अतः मुझसे रहा न गया- ''लेकिन 'पतंगा' जी आपने तो ...।''

''अरे आप भी आ गए उनके झांसे में।'' मेरा वाक्य पूरा होने से पहले ही यह बोल पड़े थे- ''मेरे-आप जैसों को न बुलाएँ, तो कैसे चले उनका धंधा।''

संपर्क : 706, सेक्टर-13, हिसार-125005

जीवन

❍ डॉ० सतीशराज पुष्करणा

टी०वी० पर आ रही फ़िल्म 'संध्या-छाया' को आदेश बहुत गंभीरता से देख रहा था कि किस प्रकार उसे अपने दो-दो जवान एवं कमाऊ पुत्रों के होते हुए इस वृद्ध अवस्था में जैसे-तैसे दूसरों के सहारे अपना जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है।

ज्यों-ज्यों फ़िल्म आगे बढ़ती जा रही थी, वह अपने बारे में सोच-सोचकर परेशान होता जा रहा था। वह दुःखी हो उठा। उसका दुःख उसकी आँखों से छलकने लगा। इतने में आदेश की पत्नी छाया भी अपने घरेलू कामों से निजात पाकर फ़िल्म देखने के विचार से आ गयी।

''क्यों जी! कैसी चल रही है फ़िल्म?''

''बहुत ... बहुत सुंदर ...।''

पति के चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही वह एकाएक घबरा उठी। ''क्या बात है? आप रो रहे हैं?''

''अरे कुछ नहीं! बस यों ही भावुक हूँ न! इस 'संध्या-छाया' फ़िल्म में वृद्ध दम्पति की स्थिति देखकर तथा अपने बारे में सोचकर अपने आपको रोक न सका और ... अरे ...

तुम भी देखोगी तो स्वतः पिघलने लगोगी जो मैं सोचने लगा था, वही तुम भी सोचने हेतु विवश हो जाओगी।''

''तब तो मैं चली, रुलाने वाली फ़िल्म मुझे नहीं देखनी, ज़िंदगी में यों ही क्या कुछ कम रोना-धोना है। ज़िंदगी की सच्चाई तो हम नित्य-प्रति देखते एवं भोगते ही हैं ... टी०वी० ... फ़िल्म में भी वही ... तब तो जीना दूभर हो जाएगा।''

''तब क्या चाहती हो ... ?

''ज़िंदगी से इतर कुछ कपोल-कल्पनाएँ, जो जीवन का दुःख न दिखाकर सुंदर सपनों का आनंद दे ... कुछ ही क्षणों के लिए ही सही, कुछ तो राहत मिले।''

दोनों बातें भी करते जा रहे थे

और फ़िल्म भी देख रहे थे। छाया भी फ़िल्म को देखते-देखते भावुक होने लगी।

आदेश ने देखा, तो उसने पत्नी से कहा, ''जाओ! कुछ फिल्मी पत्रिकाओं या कॉमिक्स में अपने को उलझा लो या अपनी दोनों बेटियों से गपशप करो।''

''नहीं! वे दोनों अपने कमरे में पढ़ रही हैं ... यों भी यहाँ अपना जीवन देखकर अच्छा लग रहा है।''

टी०वी० की ओर संकेत करते हुए पत्नी ने कहना आरंभ किया, ''इस वृद्ध दंपति के तो दो बेटे हैं और ये परेशान हैं हमारी तो दो बेटियाँ हैं ... शादी के बाद अपने-अपने घर चली जाएँगी ... तब हमारा क्या होगा ?''

''चिंता मत करो ! ईश्वर जो करेगा सब ठीक करेगा ... ।''

''क्या अच्छा करेगा! आप लोग फिल्म देख रहे हैं या किसी समस्या में उलझे हैं?'' ये बड़ी बेटी प्रेरणा थी, जो अपनी छोटी बहन इला के साथ फिल्म देखने के विचार से यहाँ चली आयी थी।

''अरे नहीं बेटा ! ऐसा कुछ नहीं है।''

''बता क्यों नहीं देते? सयाने बच्चों से कुछ छिपाने की बजाए उन्हें अपनी समस्याओं का हिस्सेदार बनाना चाहिए।'' इतना कहकर छाया ने दोनों बेटियों को सारी बातें बता दीं।

''कमाल कर दिया पापा ! आप जब हमें बेटा समझकर ही पाल-पोस और पढ़ा- -लिखा रहे हैं तो यक़ीन रखिए ... आप निश्चिंत हो जाइए।'' प्रेरणा ने अपने माता-पिता के दुःख पर आशा का फाहा रखा।

''हाँ पापा ! दीदी ठीक ही कह रही हैं। आज लड़का-लड़की में अंतर नहीं है, बल्कि लड़कियाँ लड़कों से अधिक अपने दायित्व को समझती हैं। फिर पापा फ़िल्म को फ़िल्म की तरह ही देखना चाहिए ... ज़िंदगी की तरह नहीं ... आनंद लीजिए।''

इला की बात पर सब हँस पड़े।

संपर्क: 'लघुकथानगर', महेन्द्रू, पटना- 800006 (बिहार)

हक़

रामशंकर चंचल

रमली बेहद ख़ूबसूरत व चरित्रवान थी। शादी हुए पाँच वर्ष हुए थे, एक मासूम सुंदर तीन वर्ष का लड़का था रतना। पति रामसिंह एक ऑफ़िस में बाबू था, दिखने में रमली के ठीक विपरीत। बेडोल शरीर, छोटा क़द व कुरूप। फिर भी रमली राम सिंह से बेहद प्यार करती। हाँ! उसका शराब पीना उसे पसंद नहीं था। उसने रामसिंह को प्यार से बहुत समझाया पर बात बनने की जगह बिगड़ती गई। रामसिंह अब रोज़ शराब पीकर शाम घर आता और बेवजह रमली को मारता- -पीटता। रमली चुपचाप सहन करती। कभी-कभी तो इतना मारता कि रमली के खूबसूरत जिस्म पर सूजन तक आ जाती, वह रात भर सो नहीं पाती। विवश रमली रोज की इस मार को सहन करने के लिए ख़ुद भी रामसिंह के घर आने से पहले थोड़ी शराब पी लेती, ताकि उसकी बेतों की मार को सहन कर सके। अथाह नशे में रामसिंह को कभी यह एहसास नहीं हुआ कि रमली ने भी शराब पी रखी है। रमली क़रीब दो-तीन वर्षों तक यह पीड़ा-यातना सहन करती रही, पर कभी किसी से कुछ नहीं कहा। पर आज रामसिंह शाम घर लौटा, तो उसके साथ ऑफ़िस में काम करने वाली झेला भी थी। रामसिंह घर में घुसते ही झेला की कमर में हाथ डाले उसे अपने साथ भीतर पलंग पर ले गया और दोनों एक दूसरे से लिपट खेलने लगे। रमली ने सब कुछ अभी तक सहन किया, पर आज वह यह सहन नहीं कर सकी कि उसके रामसिंह पर कोई और हक जमाए। सदैव भोली-सीधी रहने वाली रमली ने आज काली का रूप धारण कर लिया और झेला की चोटी खींचती हुई उसे कमरे से बाहर कर दिया। फिर रामसिंह और झेला दोनों पर वह ख़ूब जमकर बरसी तथा खरी- -खोटी सुनाते हुए दोनों की गर्दन दबाकर उन्हें मारने-मरने पर उतारू हो गई। क्षमा याचना करते हुए रामसिंह आश्चर्य और डर से देखता रह गया रमली का यह रूप ...।

संपर्क : मा०, 145, गोपाल कॉलोनी, झाबुआ- 457661 (म०प्र०)

हाइकु काव्य

❍ नलिनी कांत

(1)

भारत माता
तो शहीद-वत्सला
शोणित स्नाता

(2)

उपजे अन्न
किसान हो संपन्न
पूरा हो स्वप्न

(3)

आजा विदेशी
पंछी, हिमालय के
इस देश में ।

(4)

सिंहों व्याघ्रो का
पक्षियों पतंगों का
राष्ट्र है वन

(5)

मेरा तो वही
पंथ, जिसपर न
चरण-चिन्ह

संपर्क : अंडाल, पं० बंगाल-713321

अपनी पहचान

❍ बसंत कुमार

महानगर की कंक्रीटवाली सड़कें,
किनके लिए बनी हैं?
कौन चलेगा इस पर?
कैसे उपयोग किया जाएगा?
ढेर सारे प्रश्न उफनते हैं,
शायद पैदल चलने वालों के लिए
नहीं बनती हैं ये सड़कें
इनका इस्तेमाल वे नहीं कर पाते
चलने की कोशिश करते कभी-कभी लेकिन
इनके पाँव नंगे, मज़बूत और रूखड़े होते हैं

चिकनी, पनीली स्वप्नीली तारकोली सड़कें
कृत्रिम हवा भरे टायरों से पटी रहतीं
बुलेट प्रूफ टायर भी अपनी
डरी-सहमी उपस्थिति दर्ज कराती है
नंगे-थके पाँव अपनी मगडंडियों की ओर
मंद-मंद लौट आता है
एक बार फिर अपने झोपड़े की ओर
मिट्टी पूती दिवारों को निहारता है
और फिर अपनी पहचान पूछ कर
उसी मिट्टी में मिल जाता है।

संपर्क : श्री राम पथ, न्यू जक्कनपुर, पटना-१

बाहुविशाल उठो

○ हितेश कुमार शर्मा

हे रूद्र उठो, हे काल उठो, हे हिमगिरी बाहुविशाल उठो,
भारत की सुप्त आत्माओं, जागो बन जीवन ज्वाल उठो।

अब रास न हो यमुना तट पर, रूद्राभिषेक हो हर घर में,
बाँसुरी नहीं गांडीव, गदा, त्रिशूल, बघनखा हो कर में।

अनगिन भस्मासुर घूर रहे, सत्ता से अभय दान पाए,
अपहर्ता, आतंकी, डाकू है छुपे विधायी परिसर में।

अब रक्त बीज की तरह, अनेक कंस, अनेक रावण हैं,
संसद के हर एक खम्बे से बनकर नरसिंह-कराल उठो।

हे पृथ्वीराज चौहान, अशोक महान, अरे राणा प्रताप,
मिटती अखण्डता भारत की, एकता कर रही है प्रलाप।

आतंकवाद, नक्सलीवाद, यह उग्रवाद, उल्फा निनाद,
इन सब के बीच बटी, भारत-माता देखो करती विलाप।

वसुधैव कुटुम्बकम् का पौधा, रोपा था भारत ने भू पर,
जो उसे काटता दीख पड़े, उसकी हो तेरह ताल उठो।

हे भगत सिंह, बिस्मिल, सुभाष, हे लौह पुरुष वल्लभपटेल,
झांसी रानी, दुर्गाबाई, डालो अब दुष्टों का नकेल।

अब्दुल हमीद, अब्दुल कलाम, किदवई सरीखे देशभक्त,
आओ फिर पकड़ो बागडोर, हो गए सभी सारथि फेल।

अपने इन सब नेताओं में निर्णय की क्षमता रही नहीं,
सारथि-विहीन रथ की पुत्रों करनी है तुम्हें संभाल उठो।

हे राम, अरे घनश्याम, भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल दौड़ो,
आतंकी आँधी के आगे दीवार बनो, हर भ्रम तोड़ो।

आतातायि चाहे जो हो, चौराहे पर दो उसे सज़ा,
भारत माँ का आवाहन है, शत्रु को जीवित मत छोड़ो।

है क़सम तुम्हें भारत माँ के आँसू की, उसके आँचल की,
जो बेच रहे हो देश धरा, उनकी अब खींचों खाल उठो।

संपर्क : गणपति काम्प्लैक्स सिविल लाइन्स,
बिजनौर-246701 (उ०प्र०)

निलय उपाध्याय की दो कविताएँ :

वापस आ जाओ

सुनो–
वापस आ जाओ
अपनों के लिए कभी बन्द नहीं होते
दरवाजे
जैसे साध के सोहर गूँजते हैं
जैसे हुलास के बजते हैं बधावे
जैसे सगुन होता है
जैसे नहा-धो घर आते हैं
आ जाओ
लौटते हुए
तुम्हें रोने-पीटने की आवाजें मिलेंगी
हड्डियों के पहाड़-खून की नदियाँ
यह सोच मत लौट जाना कि सब
कुछ
तुमने ही किया है
तुम्हारे साथ के पेड़ फलने लगे हैं
घर गैया ने पाँच बछड़े दिये तब से
जिनके लौटने की उम्मीद नहीं थी
उनकी खबर आई है
आ जाओ
हम फिर से शुरू करेंगे अपनी यात्रा
किसी पेड़ से माँग लेंगे दातून
किसी नदी में नहाएँगे
किसी बोधि-वृत्त के नीचे खीर खाएँगे
सुनो–
वापस आ जाओ
इस कठिन समय में तुम्हारे
आने के खयाल भी सुख देते हैं।

●

सचिवालय गेट पर खड़े लड़के

पटना के
सचिवालय गेट पर खड़े लड़के
जवान हैं अभी
जब भी सड़क पर कोई दिखता है
उसकी पीड़ा में प्रवेश करते हैं
पूछते हैं नाम
और पता
ऐसे ही उनके पचास साल गुजर गए हैं
बीतते जाएँगे दशक दर दशक
सदियाँ बीत जाएँगी
और यूँ ही खड़े रहेंगे
सचिवालय गेअ पर खड़े लड़के
राज सत्ता चाहती है बूढ़े हो जायँ लड़के
धुँधली हो जाय उनकी स्मृति
ताकि सुरक्षित रहे
सुरक्षित रहे राजा की नींद
सुरक्षित रहे योजनाओं की आड़ में
राजा का भविष्य
और सुरक्षित रहे हर दशक में
जवान लड़कों की मौत
इसके लिए सेना आती है
राजसत्ता की सेना
कानून आते हैं
राजसत्ता के कानून
धर्म आता है
राजसत्ता के धर्म
और घबराकर लौट जाते हैं
कि सचिवालय गेट पर खड़े लड़के
जवान हैं अभी।

संपर्क : 14 बी/44 उदिश्रा, मित्तल इंक्लेब नया गाँव (ईस्ट) ठाणे-मुंबई

बदलती जीवन-स्थितियों की तलाश

○ समीक्षक : सिद्धेश्वर

मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, काम, निष्काम, गाँव, शहर, प्रगतिवाद, प्रतिक्रियावाद, अस्तित्ववाद, आधुनिकतावाद, समकालीनता, उत्तर आधुनिकता और पता नहीं कई नावों में हिंदी कहानी कई बार चढ़ी, कई घाटों पे उतरी, लेकिन प्रेमचंद, रेणु और शरत चंद ने जो कहानियां लिखीं, वे जन-मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ गईं। जब हम आधुनिक हिंदी कहानियों के बारे में विचार करते हैं, तो हम पाते हैं कि इसने मुश्किलों और संघर्षों का सामना करते हुए ही अपनी पहचान विकसित की है। मुश्किलों और संघर्षों से सामना करने वाली प्रवृत्तियों में परिवर्तन की जो प्रक्रिया रही है उसका स्पष्ट प्रभाव हिंदी कहानियों में मिलता है। यही वजह है कि 'उसने कहा था' जैसी कहानी में द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव मिल जाता है। प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार और यशपाल की कई कहानियों में उस समय की कई राष्ट्रीय घटनाओं और सामाजिक आंदोलनों की छाया स्पष्ट दिखती है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी जिया लाल आर्य एक ऐसे ही कथाकार हैं, जिन्होंने अपने अद्यतन पाँचवें कहानी-संग्रह 'जो वह न कह सकी' में न केवल सामाजिक विमर्श में रुचि ली है, बल्कि इसकी तेरह कहानियों में सामाजिक परिघटनाओं, परिवर्तनों और आंदोलनों के प्रभाव में बदलती जीवन-स्थितियों और मूल्यों के आरेखों की तलाश की है। इनकी कहानियाँ सामाजिक सरोकारों से रू-ब-रू रही हैं। दलितों का आंदोलन हो या दलित-पीड़ित स्त्रियों का संघर्ष से लेकर बाजार तक की परिघटनाएँ इन सबसे इनकी कहानियां टकराती-जूझती और दो-चार होती हुई आगे बढ़ी हैं। इस संग्रह की कहानियों में सामाजिक विमर्श के सापेक्ष उन प्रवृत्तियों की पड़ताली की जिज्ञासा और अपेक्षा भी है। यह समय की धड़कन, उसके संघर्ष और चेतना के विकास को भी अपने में संजोए हुए है। तभी तो इस कहानी संग्रह की पहली कहानी 'जो वह न कह सकी' जिसके शीर्षक को कहानी-संग्रह का नाम दे दिया गया है, में इसकी पात्र तथा जगतारन महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद की प्राचाया कृष्ण जी ने अपने सहपाठी और इस पुस्तक के लेखक श्री आर्य जी से कहा, ''इतने अंतराल के बाद तुमसे मिलकर मुझे अकथनीय आनंद मिला। मेरे जीवन के कुछ वर्ष बढ़ गए। तुम्हें याद है जिया, एक बार तुमने कहा था, 'कृष्णाजी, आज आप बहुत सुंदर लग रही हैं, तुम शायद पहले और अंतिम व्यक्ति हो जिसने मेरे सौंदर्य की तहेदिल से प्रशंसा

की हो। वैसे तो हर औरत चाहती है कि कोई उसके सौंदर्य की श्लाघा करे। ''सर्वजन मनोभिरामं खलु सौभाग्यंनाम' उस दिन क्लास में मेरे सौंदर्य की प्रशंसा करके तुमने औरत होने का अहसास करा दिया था।'' इस प्रकार कथाकार श्री आर्य ने पात्र कृष्णा जी के मनोभावों को बेहतरीन ढंग से अपनी कथा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिसमें अंत तक कहानी का सस्पेंस भी बना रहता है। इसलिए कहानी जबतक पूरी न हो जाए उसे छोड़ने का मन नहीं करता है। श्री आर्य जी की कहानियाँ मुझे इस दृष्टिकोण से भी अच्छी लगती हैं, क्योंकि साहित्य की सामाजिक सार्थकता को प्रमुखता देने वाले रचनाकारों की कहानियाँ मेरी पहली पसंद में आती हैं। इनकी कहानियाँ हमारी उम्मीद और अपेक्षा बढ़ाती हैं।

कहना नहीं होगा कि प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने सामाजिक और मानसिक धरातलों पर हो रही उथल-पुथलों को भी करीब से देखा और महत्त्व के साथ रेखांकित किया है। 'प्रतिवेदन' कहानी में नक्सलवाद पर की गई चर्चा इसका साक्षी है जिसमें नहीं कुछ कह के भी इन्होंने बहुत कुछ कह दिया है। ऐसी कई अव्यवस्थाओं को दूर कर व्यवस्थित मूल्याँकन के रास्ते तैयार करने की दिशा में आर्य साहेब का यह कार्य सराहनीय है। जरूरत इस बात की है कि इनके इस प्रयास को और आगे बढ़ाया जाए, क्योंकि ऐसे अनेक प्रयासों के बाद ही हिंदी कहानी की सच्ची और मुकम्मल तस्वीर बन पाएगी।

श्री आर्य की कहानियों की एक और विशेषता यह है कि इनमें हमारे आज के समय का दर्द और समस्याएँ भी दर्ज हैं। प्रस्तुत पुस्तक की तेरह कहानियों से गुजरने के बाद मैंने यह महसूस किया है कि कथाकार ने आम आदमी के जीवन को न केवल बड़ी करीब और सजगता से देखा है, बल्कि उसे गुना भी है। आखिर तभी तो जीवन-मर्म की अनुभूतियों को बड़ी ईमानदारी से अभिव्यक्त करने में ये सफल हुए हैं, मगर कहीं-कहीं ये कहानियाँ थोड़ी सपाट भी लगती हैं और क्लिष्ट शब्दों एवं बनावटी भाषा के प्रयोग से ये बोझिल हो गई लगती हैं। जैसे पृष्ठ 13 पर 'अनुसन्धित्सु' जैसा शब्द पाठक के लिए बिल्कुल ग्राह्य नहीं है। इसी प्रकार पृष्ठ 14 के इन वाक्यों को देखें- ''विद्यार्थियों के मुखर भावावेष और सहजोन्माद सहज ही श्रान्त हो गए', उसके अंग प्रत्यंग से गोरोचन की विभा विकीर्ण हो रही थी।'' पृष्ठ 15 में बाला के लहराते बालों के बारे में कथाकार ने यों चित्ररण किया-

शेषांश पृष्ठ नं. 24 पर

अंधकार को हम क्यों धिक्कारें? अच्छा है, एक दीप जलाएँ

❍ समीक्षक : डॉ० ऋषभ देव शर्मा

पत्रकारिता ने सूचना और मनोरंजन के अलावा सामाजिक परिवर्तन में अग्रणी भूमिका निभाई है। आज की व्यावसायिक पत्रकारिता अनेक विकृतियों के बावजूद इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता, बल्कि तथ्य तो यह है कि पूरी तरह बाजारीकरण के दौर में भी ऐसे पत्रकार और संपादक विद्यमान हैं, जो लाभ और लोभ के लिए नहीं, वरन् समाज और राष्ट्र के लिए पत्रकारिता करते हैं। राष्ट्रीय चेतना के ऐसे पक्षधर और मूल्यों के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित ऐसे पत्रकारों का लेखन तात्कालिक प्रासंगिकता के बाबजूद व्यावसायिक लेखन जैसा क्षणजीवी नहीं होता, बल्कि उसका मूल्य काल की कसौटी पर चढ़कर और भी खरा साबित होता है। यही कारण है कि किसी भी सामाजिक-राष्ट्रीय चेतना संपन्न सजग पत्रकार का लेखन समाज को नेतृत्व प्रदान करने में समर्थ होता है और इसीलिए पत्र-पत्रिका के स्तंभ की सामग्री के ही नहीं, वरन् स्थायी महत्व की पुस्तकीय सामग्री के रूप में भी उसकी उपादेयता असंदिग्ध होती है।

'समकालीन संपादकीय' सिद्धेश्वर के ऐसे ही लेखन का प्रमाण है। वरिष्ठ पत्रकार सिद्धेश्वर अपने सुदीर्घ पत्रकार-जीवन में 'प्रहरी', 'संघमित्र', 'राष्ट्रीय विचार पत्रिका' और 'विचार दृष्टि' जैसी सौद्देश्य पत्रिकाओं के संपादक रह चुके हैं। अपने संपादकीय दायित्व का निर्वाह करते हुए समय-समय पर लिखित उनके संपादकीय अब एक स्थान पर संकलित होकर इस पुस्तक के रूप में आए हैं। संपादकीयों का यह संकलन लेखक के व्यक्तित्व और चिंतन की कई सारी तहों से परिचित तो कराता ही है, नई पीढ़ी में राष्ट्रीय चेतना के संस्कारों का संचार करने में उनके लेखन के सामर्थ्य को भी उजागर करने वाला है।

इसमें संदेह नहीं कि सिद्धेश्वर ने 382 पृष्ठ के इस ग्रंथ में संकलित संपादकीय आलेखों/टिप्पणियों/निबंधों में बीसवीं शताब्दी के आख़िरी दशक और इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक दशक के भारतीय परिदृश्य में समाज, साहित्य, संस्कृति और राजनीति का सटीक विवेचन-विश्लेषण किया है, क्योंकि ये चारों ही उनके प्रिय विषय रहे हैं। जैसा कि लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है, इन संपादकीयों पर किसी प्रकार के दार्शनिक

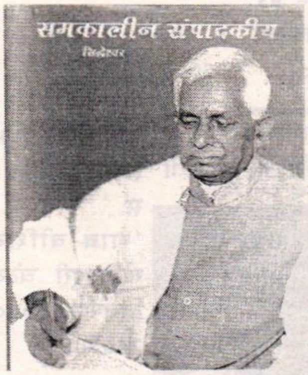

भाव, वाद की उपेक्षा सामाजिक दृष्टिकोण का प्रभाव स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। सामाजिक प्रश्नों को संबोधित ये लेख जनसाधारण के जीवन-यथार्थ से अनुप्राणित हैं और उसे ही संबोधित भी। लेखक की मान्यता है कि आज हमारे समाज को भूमंडलीकरण और उत्तर-आधुनिकता के नाम पर वैचारिक शून्यता के गर्त में धकेला जा रहा है। निश्चय ही इस स्थिति से उबरने के लिए वैचारिक स्वराज्य का निर्माण अत्यावश्यक है। यही हमारे विचार से आज के समय जागरूक लेखन का भी दायित्व है। इसके लिए लेखक ने सरदार वल्लभभाई पटेल के चरित्र को अनुकरणीय राष्ट्रीय आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है और राष्ट्रीय अखंडता को अपने संपादकीय लेखन का सर्वोपरि सरोकार बनाया है।

छः खंडों में नियोजित इस ग्रंथ में अनेक स्थलों पर लेखक की यह चिंता व्यक्त हुई है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीयों की 'भारतीयता' की चेतना का निरंतर ह्रास हुआ है और 'भारतीयम' पर तरह-तरह के 'अहम्' हावी होते चले गए हैं। सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि हमारा समाज इतने टुकड़ों में बंट गया है कि एक संपूर्ण राष्ट्र की संकल्पना व्यर्थ प्रतीत होने लगी है। अलगाववादियों, देशद्रोहियों और आतंकवादियों के हाथ इतने लंबे हो चुके हैं कि खासोआम सब एक जैसी असुरक्षा झेलने को अभिशप्त हैं। प्राय: ऐसा लगने लगा है जैसे यह देश व्यवस्थाविहीन होकर अब उग्रवादियों के रहमोकरम पर जिंदा है! इस स्थिति के लिए लेखक ने स्वार्थी राजनीति को मुख्य रूप से जिम्मेदार माना है।

इन परिस्थितियों में सामाजिक-राष्ट्रीय जागरण का अपना प्रारूप प्रस्तुत करते हुए सिद्धेश्वर का यह कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि 'विचारवान, समझदार भले मानुषों और विचारशील बुद्धिजीवियों को पहलकारी कदम बढ़ाकर आगे आना होगा। वे आख़िर कब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे मूकदर्शक बने रहेंगे? अँधेरा सिर्फ़ इसलिए तो नहीं छंट जाएगा कि कोई नेक आदमी उजाले की प्रतीक्षा में बैठा है। अतएव समाज और देश में व्याप्त घटाटोप अँधकार को हटाने के लिए हमें प्राचीन सूत्र अपदीपो भव के अनुसार शब्दश: स्वयं दीपक बन कर प्रकाशित होने का पुरुषार्थ करना होगा। अँधकार को हम क्यों धिक्कारें? अच्छा है, एक दीप जलाएँ।'

राष्ट्रीयता के विचार रूपी इस दीप को जलाए रखने के प्रयास के साकार रूप के तौर पर सिद्धेश्वर के इस ग्रंथ का देश भर में व्यापक हार्दिक स्वागत होगा, इसमें संदेह नहीं।

संपर्क : दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद मो०- 09441822661

चिंतन, मनन एवं अध्ययन का उत्कृष्ट निदर्शन

❍ समीक्षक : डॉ० योगेन्द्र प्रसाद

लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद-ग़ाज़ियाबाद, उ०प्र० के हिंदी-विभाग के अध्यक्ष डॉ० महेशचंद्र शर्मा ने अपनी 'राष्ट्रीय संदर्भ में साहित्य की उपादेयता तथा अन्य निबंध' नाम्नी कृति अपने श्रद्धेय पिताश्री श्री रतनलाल शर्मा की पावन स्मृति को समर्पित की है, जिन्होंने डॉ० शर्मा में ईमानदारी, अनुशासन एवं सदाचार के संस्कार बचपन में ही पैदा कर दिए थे।

डॉ० शर्मा-कृत यह शोधात्मक एवं आलोचनात्मक निबंध-संकलन बीस निबंधों पर आधारित है, जिसमें यशस्वी साहित्यकारों एवं उनकी प्रसिद्ध रचनाओं का समावेश लक्षित होता है। पहला निबंध कृति का शीर्षक निबंध है, जिसके माध्यम से राष्ट्रीय संदर्भ में साहित्य की उपादेयता को उकेरा गया है, जबकि दूसरे निबंध में संत कबीर को व्यंग्य के माध्यम से समाज का मार्ग-दर्शक कवि प्रतिपादित किया गया है। तीसरे निबंध में कबीर एवं जायसी के रहस्यवाद का तार्किक विवेचन करते हुए, दोनों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। चौथे, पाँचवे एवं छठे निबन्ध में गोस्वामी तुलसीदास का शिक्षा-दर्शन, उनकी भक्ति-भावना तथा रामचरितमानस के संदर्भ में उनको 'लोकनायक कवि' के अलंकरण से नवाज़ा गया है। सातवें निबंध में बिहारीलाल के मुक्तककार को उभारने का सार्थक कार्य किया गया है। आठवें निबंध में विभिन्न विद्वानों के तर्कों का आश्रय लेते हुए उन्होंने रीतिकाल के वैज्ञानिक नाम का निर्धारण किया है।

पुस्तक : 'राष्ट्रीय संदर्भ में साहित्य की उपादेयता तथा अन्य निबंध' (शोध एवं आलोचना)
लेखक : डॉ० महेशचंद्र शर्मा
प्रकाशन : लोकवाणी संस्थान, शाहदरा-दिल्ली- 93
प्रकाशन-वर्ष : 2006
मूल्य : 150 रुपए मात्र

पृष्ठ संख्या : 127
संपर्क : संपादक 'भाव-वीथिका' गोविंदपुरी चंदक - बिजनौर (उ०प्र०)- 246701

नौवे निबंध में जहाँ कविवर मैथिलीशरण गुप्त के काव्य पर गाँधीवाद का प्रभाव दर्शाया है, वहीं दसवें निबंध में उन्होंने गुप्त जी की उर्मिला को आधुनिक युग-संदर्भ की दृष्टि से देखने-परखने का अभिनंदनीय कार्य किया है। ग्यारहवें निबंध में छायावाद के प्रवर्त्तक जयशंकर प्रसाद की नारी विषयक अवधारणा (आधुनिक संदर्भ में इसकी उपादेयता को दर्शाते हुए) का निरूपण किया है। यह कार्य उन्होंने 'कामायनी' के विशेष संदर्भ में किया है। बारहवें निबंध में प्रसादकृत 'कामायनी' को आधुनिक युग-संदर्भ में उपस्थित किया है। तेरहवें एवं चौदहवें निबंध (क्रमशः) में जयशंकर प्रसाद को छायावादी महाकवि के रूप में दर्शाते हुए आधुनिक कविता के क्षेत्र में छायावाद के अवदान का मूल्याँकन किया है। परवर्ती निबंधों में पं० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', निबंधकार रामचंद्र शुक्ल, संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामकुमार वर्मा, सुमित्रानंदन पंत तथा व्यंग्यकार सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' सरीखे यशस्वी साहित्यकारों के जीवन एवं रचनात्मक अवदान पर प्रकाश डाला है।

यह कहना निरापद है कि विषय-वस्तु की दृष्टि से संपन्न तथा भाषा-शैली की दृष्टि से सशक्त समीक्ष्य 'कृति' प्रतिभावान समालोचक एवं वरिष्ठ निबंधकार डॉ० महेश चंद्र शर्मा के समाज, राष्ट्र, साहित्य, संस्कृति एवं मानवता के क्षेत्र में अद्भुत अवदान को हमारे सामने रख रही है। आकर्षक प्रस्तुति एवं नयनाभिराम कलेवर की निबंधात्मक 'कृति' देने के लिए लेखक को बहुत-बहुत बधाई तथा नमन।

पृष्ठ नं. 22 का शेषांश

आज उसके बाल खुले हुए थे, जो विद्युतपंख के विजन से लहरा-लहरा जाते। इसी प्रकार पृष्ठ 23 पर 'घूस' की जगह 'उत्कोच' का प्रयोग पाठक को खलेगा।

फिर भी मैं निष्कर्षतः दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस दौर के सबसे महत्त्वपूर्ण कथाकार उदय प्रकाश ने जिस प्रकार 'टपचू', 'तिरिछ', 'छप्पन तोले का करघन' 'और अंत में प्रार्थना' जैसी कहानियाँ लिखकर अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है, उसी प्रकार जिया लाल आर्य के अबतक प्रकाशित छह कहानी-संग्रह उस समय को, जिसमें हम जी रहे हैं प्रतिबिंबित करने में पूर्णतः सफल हैं, क्योंकि कथाकार ने अपने समय को बहुत अच्छी तरह पहचाना है। इन्होंने बहुत से लोगों की इस भावना को अभिव्यक्ति दी है कि हम लोकतांत्रिक प्रणाली में नहीं जी रहे, बल्कि नेताओं और अपराधियों के बुने हुए तंत्र में जी रहे हैं। जाहिर है कि इसमें जीना कितना मुश्किल होगा। इस संग्रह को श्री आर्य के सृजनात्मक-चरम के रूप में देखा जाना चाहिए। इनकी धारदार कलम इसी तरह निरंतर चलती रहे, हमारी यही कामना है।

उपेक्षा की क्रूरता झेलते बुजुर्ग

○ सिद्धेश्वर

इलेक्ट्रॉनिक एवं डिजीटल की फौरी दबदबेवाली दुनिया के हमारे मौजूदा समाज में उपेक्षा की क्रूरता झेलते बुजुर्गों के प्रति कृत्यों को यदि हम जानने का प्रयास करते हैं, तो हमारी आँखों में तकलीफ की नदी उमड़ पड़ती है। अभी-अभी कुछ दिनों पहले नब्बे साल के एक पंजाबी बुजुर्ग जगदीश प्रसाद शर्मा को एक ऑटो चालक बेटे ने अपने ऑटो पर लादा और अपने निवास से काफी दूर राष्ट्रीय राजधानी के एक समृद्ध इलाके रोहिणी में छोड़ कर चला गया। चलने-फिरने से लाचार लकवाग्रस्त श्री शर्मा को एक फोल्डिंग चारपाई पर लिटाकर बेटा चलता बना। श्री शर्मा का दूसरा बेटा भी बस चालक है। इन दो बेटों के रहते एक लकवाग्रस्त बुजुर्ग का सड़क पर लावारिस की तरह पड़े रहना यह बताता है कि हमारा समाज किस दिशा में बढ़ रहा है। यह तो हुई एक बस तथा ऑटोचालक के पिता की कहानी जिसे सड़क से गुजरते कोई भी मुसाफिर पढ़ सकता है, मगर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के फौरी दबदबेवाले हमारे वर्त्तमान समाज में बुजुर्गों के प्रति भिन्न संदर्भों में दोहराए जाने वाले इससे कहीं ज़्यादा दारूण कृत्य इसलिए चर्चा में नहीं आ रहे हैं, क्योंकि वे सड़क पर नहीं, आलीशान बंगलों में घटित हो रहे हैं। दरअसल, संयुक्त परिवार का ढाँचा बिखरने के बाद एकल परिवार में चल-फिर सकने में लाचार बुजुर्गों के लिए जगह पाना फिल्मों और सिरियलों में जितना आसान होता है, आम ज़िंदगी में यह उतना ही कठिन होता जा रहा है। कारण कि अब तो पति-पत्नी दोनों के कामकाजी होने की हालत में घर पर बूढ़े माँ-बाप की देख-रेख तो दूर बच्चों की देखरेख नहीं हो पा रही है। यह स्थिति अंततः बेटे-बहू को अपने-आप क्रूरता और अपराधबोध के हिंडोले में झूलते रहने के लिए विवश कर देती है। यह हालत मध्यवर्गीय आयवाले परिवार की। अत्यंत उच्च वर्ग की तो दुनिया ही अलग है। उनकी तो शामें पाँच सितारा पार्टियों में कटती हैं जिसकी वजह से उपेक्षा की क्रूरता बड़े बुजुर्गों के साथ-साथ बच्चों को भी झेलना पड़ता है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि महंगाई की वजह से जहाँ मध्य एवं निम्न आय वर्ग वाले परिवारों में दो जून की रोटी उपलब्ध नहीं हो पा रही है वहाँ ऐसे परिवार के लोग इंसान की जगह जानवर तो कभी राक्षस बनने को मजबूर हो रहे हैं, क्योंकि वे अपना सारा जीवन पेट पालने में ही नहीं, ऐसा करते हुए इस देश की धन-संपदा बढ़ाने में लगाने वाले हमारे बुजुर्ग आज एक भयानक नियति के शिकार हैं। आज हमारा समाज एक ऐसी काली गुफा की ओर बढ़ता जा रहा है जहाँ जाकर हमारी सभ्यता, संस्कृति सब कुछ नष्ट होती जा रही है।

क्रूरता की एक और शर्मसार करने वाली एक और घटना पटना में घटी, जिसमें एक वृद्ध आई०ए०एस० पिता की धन लेने की लालसा में अपने नौकर के सहयोग से बेटा ने उन्हें मार डाला। जिस बेटे को माँ-बाप ने पाल-पोसकर बड़ा किया और उसी के लिए धन अर्जित किया उसी को तुरंत हथियाने के लिए उसी बेटे ने उन्हें मार डाला। इससे बढ़कर जघन्य क्रूरता और क्या हो सकती है?

क्रूरता की हदों को पार करती एक और ताजा घटना की याद आ रही है जो पटना के हमारे पुरन्दरपुर मुहल्ले की है जिसमें बेटे ने ही अपने पचपन वर्षीय बाप को चौथी मंज़िल से नीचे ढकेल दिया और नीचे गिरते ही उसकी मौत हो गई। उसका कसूर सिर्फ़ इतना ही था कि वह अपनी पत्नी से तली हुई मछली का एक टुकड़ा खाने के लिए माँग रहा था। कहा जाता है कि उसकी पत्नी ने ही इसी बात पर अपने कुपुत्र को ऊपर से ढकेलने का इशारा किया। दरअसल कहानी यह है कि मृत्य बुजुर्ग बिहार सरकार की एक अच्छी-खासी नौकरी में था और उसके सेवा-निवृत्त होने में अभी तकरीबन पाँच साल की देरी थी इसलिए अपने बेटे की अनुकंपा के आधार पर नौकरी दिलाने की इच्छुक उसकी पत्नी अपने पति को मार डालना चाहती थी। जीवित रहते भी इस आशय का गुहार उसका पति कई बार लगा चुका था कि उसकी पत्नी और बेटे सभी मिलकर उसे मार देना चाहते हैं ताकि अनुकंपा के आधार पर बेटे को नौकरी हासिल हो जाए। रात देर-सबेर जब वह अपने घर लौटता था तो उसके घरवाले जान-बूझकर किवाड़ नहीं खोलते थे और नशे में ही सही वह आदमी किवाड़ खोलने की रट लगाते वक्त मार डालने के भावों को व्यक्त करता था जिसे मुहल्ले के प्रायः सभी लोग सुनकर भी अनसुनी कर देते थे कि कहीं ऐसा भी हो सकता है।

भूमंडलीकरण के मौजूदा दौर में पारिवारिक व सामाजिक रिश्ते तेज़ी से बदल रहे हैं और कोसों, मीलों ही नहीं सात समुंदर पार से भी आगे चले गए हैं। ऐसी स्थिति में साठ-सत्तर के आसपास पहुँच चुके बुजुर्गों के लिए पहले की तरह परिवार में कुछ करने को नहीं रहा। लिहाज़ा वे अपने बेटों और बेटियों के सहारे जीने वाले बुजुर्ग नहीं रह गए हैं। आम तौर पर आज देखने में आ रहा है कि ऐसे बुजुर्ग अपने पुत्र व पुत्रबधु के साथ रहना भी पसंद नहीं करते,

क्योंकि अपने माता-पिता के साथ उनके व्यवहार व आचरण भी बदल गए हैं। एक बुजुर्ग दंपति की महिला ने हमें बताया कि वह पुत्र व पुत्रबधु के साथ रहना तो चाहती हैं, मगर दाई माँ होकर नहीं सासू माँ बनकर। यानी आज के बेटे और उनकी आधुनिक धर्मपत्नी अपनी सास को सासू माँ की तरह नहीं, बल्कि दाई माँ की तरह रखना चाहती हैं। सच तो यह है कि अधिकांश परिवार में बेटों के यहाँ रहने पर उनकी पुत्र-बधुएँ अपनी सासू माँ के साथ दाई से भी बदत्तर व्यवहार करती देखी-सुनी जा रही हैं। बदत्तर इस माने में कि मालकिन के भला-बुरा कहने पर अथवा कम रोटी देने पर दूसरा रास्ता अपना लेती है और जहाँ दो-चार दिन तक वह काम से अनुपस्थित हो गई, तो मालकिन का दिवाला निकल जाता है इसलिए उसे मालकिन हर क़ीमत पर ख़ुश रखना चाहती है। इसके ठीक विपरीत अपनी सास को वह चाहे जितना भी भला-बुरा कह दे अथवा आधी रोटी ही दे, वह जानती है कि वह कहाँ जाएगी। ख़ासकर जो बुजुर्ग माता-पिता पूरे तौर पर अपने बेटे पर निर्भर हैं उनकी हालत तो बहुत बुरी है। मगर जिस माता-पिता को पेंशन अथवा अर्जित संपत्ति का सहारा होता है, तो वे अपने रास्ते अलग तय कर लेते हैं और आत्मसम्मान की ज़िंदगी जीने के लिए अपनी तरह से रहना चाहते हैं, अपनी तरह से जीना चाहते हैं और वे अपना ध्यान खुद रखते हैं। यही नहीं, बेटों का साथ छोड़कर धार्मिक और सामाजिक कार्यों में व्यस्त भी रहते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने बेटों का ख्याल उन्हें नहीं आता। रिश्तों का इस तरह तार-तार होना और कोसों, मीलों नहीं सात समुंदर पार आगे निकल जाना स्वाभाविक है।

नाभिकीय (न्यूक्लियर) परिवार आधुनिकीकरण की देन है। वर्तमान दौर में हर व्यक्ति तरक़्क़ी के लिए अतिरिक्त बंधनों से मुक्त होना चाहता है। यही कारण है कि अधिकतर परिवारों में पति-पत्नी ख़ासकर कामकाजी होने की वजह से अपने लिए निजी-फ़ासिला की माँग अधिक है। ऐसी स्थिति में दादा-दादी के साए से बच्चों का बंचित रहना स्वाभाविक हो जाता है। ऐसे कामकाजी के बच्चे को माँ-बाप से ऐसे संस्कार मिल जाते हैं कि बच्चे भी दादा-दादी से कटे-कटे रहना अपनी आदत बना लेते हैं। यही कारण है कि अधिकांश परिवारों में बच्चे टी०वी० या इंटरनेट का आदी होने की शिकायत करते हैं, किंतु सच तो यह है कि माँ-बाप ही उन बच्चों को टी०वी० एवं इंटरनेट से अपना मन-बहलाव करने को प्रेरित करते हैं और जब उनकी आदत लग जाती है तब उन्हें इससे होने वाली समस्या का भान होता है।

इसके पीछे एक अहम बात यह भी है कि दंपत्ति का कामकाजी होने की वजह से संयुक्त परिवार की अतिरिक्त ज़िम्मेदारियाँ ठीक ढंग से उठाने में असमर्थ रहते है। और अपने बच्चों के लिए बजाय दादा-दादी के साथ रहने के घर ही पर उसके मनोरंजन के सारे साधन उपलब्ध करा देते हैं। इस प्रकार आज देखने में यही आ रहा है कि माँ-बाप अपने स्वार्थ में बुजुर्गों के प्रति भी लापरवाही के साथ-साथ अपने बच्चों के स्वास्थ्य से भी खिलवाड़ करते हैं।

दरअसल, पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति से आया यह नया सामाजिक मानक धीरे-धीरे भारतीय समाज में अपनी जड़े जमाता जा रहा है। इसे स्वीकार करने वालों की संख्या अविश्वसनीय रूप से बढ़ती जा रही है, जिसका परिणाम है कि एक ही परिवार में दो भिन्न सोच वाली सास-बहू, देवरानी-जेठानी, यहाँ तक कि सगी बहनें भी नहीं रह सकतीं। इसलिए आपस में रहकर झगड़ने से अच्छा है कि शुरुआत से ही घर की रसोई अलग कर लेना पसंद करते हैं और बुज़ुर्ग माता-पिता भी ऐसे एकल परिवार से अलग रहकर अपनी पुरानी कुटिया में ज़िंदगी बिताना सुखकर मानते हैं और आनंद का अनुभव करते हैं। घर बच्चों को भी लगता है कि प्यार-दुलार से भरी जिंदगी भले न हो, तो क्या हुआ, आँखों में सुनहरे भविष्य के सपने तो हैं।

बुजुर्गों की बढ़ती संख्या, बदलता हुआ सामाजिक परिवेश एवं पारिवारिक संरचना में बुज़ुर्गों का जीवन कठिन होता जा रहा है। भारत में लोगों की औसत आयु सौ साल पूर्व 25 वर्ष की थी जो अब बढ़कर 65 वर्ष की हो गई है और मृत्यु दर प्रति हज़ार में 25 से घटकर आठ रह गई है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक बारह भारतीय के पीछे एक बृद्ध है। वृद्धों की आबादी के संदर्भ में भारत आज विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश हो गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सामाजिक-आर्थिक विभाग की ओर से सेंटर फॉर सोशल रिसर्च' की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि वर्तमान दौर में विश्व में प्रत्येक 10 में से 7 व्यक्ति 60 वर्ष से अधिक आयु के हैं। सर्वेक्षण के इस आँकड़ों से यह भी स्पष्ट है कि संपूर्ण विश्व में बुज़ुर्ग पुरुषों की तुलना में बुज़ुर्ग महिलाओं की संख्या अधिक है। विश्व के सबसे उम्रदराज़ लोगों की आधी से अधिक आबादी का केंद्र बिंदु चीन, भारत, जर्मनी, जापान, अमेरिका और रूस ये छह देश बने हुए हैं। युनाइटेड नेशंस ग्लोबल ऐक्शन ऑन एजिंग- 2007' के मुताबिक भारत और चीन में बुज़ुर्गों की संख्या 44 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है जबकि विश्व औसत 2.6 प्रतिशत का है।

ये आँकड़े बताते हैं कि शहरी क्षेत्रों में 64 प्रतिशत बुज़ुर्ग महिलाएँ और 46 प्रतिशत बुज़ुर्ग पुरुष अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए पूर्ण रूप से दूसरों पर निर्भर है। इसी का परिणाम है कि आज 'ओल्ड एज होम' जगह-जगह स्थापित हो रहे हैं और सरकार उनकी सुरक्षा के प्रति उत्तरदायी

है। वर्ष 2007 में भारत सरकार द्वारा 'माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण कल्याण विधेयक' इसी दिशा में उठाया गया एक कदम है जिससे देश के वरिष्ठ नागरिकों को राहत मिली है, किंतु आज हम यह सोचने के लिए विवश हैं कि प्रातःकाल उठकर रघुनाथ माता-पिता गुरु नावहिं माथा' की पंक्ति का अनुसरण करने वाली संतानें स्व संस्कृति से विमुख हो क्या उन्हीं के अस्तित्व को नकार नहीं रही है जो उनके जन्मदाता और पालनकर्ता हैं? यदि इस देश में बुज़ुर्गों की हालत को देखा जाए, तो स्थिति बड़ी दयनीय है। आज इस देश में 2.7 करोड़ बुज़ुर्ग ऐसे हैं जो बीमार है और जिनकी तुरत देखभाल की जरूरत है।

'एल्डर एब्यूज इन इंडिया' के एक रिपोर्ट में भारत में बुजुर्गों की स्थिति पर चर्चा करते हुए कहा गया है कि अपमान, उपेक्षा, दुर्व्यवहार और प्रताड़ना के कारण अधिकतर वरिष्ठ नागरिक बुढ़ापे को एक बीमारी मानने लगे हैं। आर्थिक सुदृढ़ता एवं क्रियाशीलता वृद्धावस्था को खुशहाल करने में कारगर सिद्ध हो सकती है पर भारत में मात्र ॥ प्रतिशत आबादी के पास सेवा निवृत्ति के बाद आय के स्रोत उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में बुज़ुर्गों की स्वाभाविक तौर पर निर्भरता अपनी संतानों पर बढ़ जाती है, पर वैश्वीकरण के इस दौर में युवाओं के लिए भागती-दौड़ती ज़िंदगी के बीच अपने घर के बुज़ुर्गों के लिए समय निकाल पाना मुश्किल हो रहा है। नतीजा यह है कि बुज़ुर्गों को अकेलापन की ज़िंदगी गुजारने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। यह अकेलापन कई बार मानसिक अवसाद का कारण भी बन जाता है। एक आँकड़े के अनुसार 1000 बुज़ुर्गों में 89 दिमागी तौर पर बीमार हैं। निश्चित रूप से यह पूरे विश्व में चिंता का विषय हो गया है। कितनी विडंबना है कि जो बुज़ुर्ग अभिभावक कभी अपने नन्हें बच्चों की उँगली पकड़कर चलना सिखाते हैं वही जीवन की साँझ में स्वयं को बिल्कुल अकेला पाते हैं। वे संतानें, जो भौतिक संस्कृति की चकाचौंध में भ्रमित हो अपनी संस्कृति को बिसरा बैठी है, वे इस सत्य को न भूलें कि आज जो वह बो रही हैं, कल उन्हें वही काटना पड़ेगा।

दरअसल यह स्थिति संयुक्त परिवारों के बिखरने से और अधिक भयावह हुई है। एकांतवास कितना दुखदायी होता है यह बुज़ुर्गों की मनःस्थिति से ही समझा जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि वरिष्ठ नागरिक या बुज़ुर्ग ज्ञान, विवेक, अनुभव और विचार के धनी होते हैं। उनमें से जो स्वस्थ, सजग और सक्षम हैं उनकी सेवाएँ सामुदायिक विकास योजनाओं, साक्षरता अभियान आदि कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में ली जा सकती है। फिर इन कार्यक्रमों में व्यस्त रहने से वे अपने आपको बूढ़ा भी नहीं समझते। यदि उनके बच्चे उन्हें मान-सम्मान देते रहें, तो 100 की आयु तक असंभव नहीं है। अब तो ख़ैर कानूनी तौर पर भी बच्चे अपने माता-पिता के भरण-पोषण तथा देखभाल के लिए उत्तरदायी हैं।

यों तो हमारे भारतीय संविधान में व्यक्ति की सामाजिक सुरक्षा का प्रावधान नहीं है, किंतु राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांतों में धारा 380, 39 (ई०एफ०) और 41 में राज्य सरकारों का यह कर्त्तव्य माना गया है कि वे अपने नागरिकों की आजीविका का प्रबंध करें, बेरोजगारी दूर करें, उनके स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान निकालें।

संपर्क : 'दृष्टि', यू० 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली- 92
फोन- 011-22530652

स्व. सिद्धेश्वर सिंह "विचार दृष्टि"
से आजीवन जुड़े रहे। इसके नियमित प्रकाशन में उनका सदैव सहयोग रहा। "विचार दृष्टि" के अप्रैल-जून 2009 के प्रकाशन पर इसके के पाठकों को सिद्धेश्वर कॉम्पलेक्स की ओर
से हार्दिक शुभकामनाएँ

प्रोपराइटर
सिद्धेश्वर कॉम्पलेक्स
खगौल रोड, मीठापुर, पटना-1

इतिहास के साथ खिलवाड़ न हो

○ डॉ० दीनानाथ 'शरण'

मुगल-सम्राट अकबर के दरबार में 'नवरत्नों' में शामिल, इतिहास-प्रसिद्ध टोडरमल क्या जाति के कायस्थ थे? या, खत्री थे ? खत्री नहीं, कायस्थ थे ? कायस्थ नहीं, खत्री थे? कुछ माह पूर्व, अखबारों में यह समाचार आया कि कायस्थ-जाति के कुछ सज्जन और 'संघ-संगठन' टोडरमल को कायस्थ मानते हैं, उनके कायस्थ होने का दावा करते हैं। क्या यह इतिहास का सच है? या कुछ कायस्थों की महज़ सनक या आस्था? इतिहास के एक सूक्ष्म और गंभीर अध्येता होने के नाते जब मेरा ध्यान इस ओर गया तब मैंने इस विषय पर गहरी जाँच-पड़ताल करने का निश्चय किया।

सर्वप्रथम मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि 'इतिहास' और आस्था में बहुत ही अंतर है। जो 'आस्था' है, वह 'इतिहास का सच' भी हो- यह कोई ज़रूरी नहीं है। 'इतिहास का सच' का संबंध 'बुद्धि' से है, जबकि 'आस्था की बात' का संबंध हृदय से है। पहले का संबंध 'दिमाग़' से है, दूसरे का 'दिल' से। जो 'दिल' कहे, वह 'दिमाग़' भी माने- यह कोई आवश्यक नहीं। दिल बहक सकता है, भटक सकता है, लेकिन दिमाग़ नहीं, क्योंकि दिल भावुकता के आवेग में बह जाता है, परंतु दिमाग बौद्धिकता की तुला पर तौलता है। तथ्यों एवं प्रमाणों के ही आधार पर विचार करता और सु-चिंतित निष्कर्ष पर पहुँचता है। इस प्रकार, 'आस्था की बात' कदापि इतिहास नहीं है। इतिहास आस्था पर नहीं चलता, उसे तथ्य तथा प्रमाण चाहिए। यही आस्था जब दीवानगी हो जाती है तो लोग अपनी आस्था के अनुसार किसी व्यक्ति को 'भगवान' या 'भगवान का अवतार' ही मानने लगते हैं परंतु वह इतिहास का सच तो नहीं हो जाता। अतः टोडरमल का 'कायस्थ' होना, न होना, इतिहास के तथ्यों तथा प्रमाणों पर तय होना चाहिए, महज़ आस्था के आधार पर कदापि नहीं।

फिर भी, सर्वप्रथम 'आस्था' के ही प्रश्न पर विचार किया जाये। श्री चित्रगुप्त आदि मंदिर प्रबंधक समिति, पटना-सिटी की 'स्मारिका-2007' में प्रकाशित 'कायस्थों के आदि पुरुष भगवान चित्रगुप्त की घर-वापसी' शीर्षक अपने लेख में कुमार अनुपम ने गया के अम्बष्ठ कायस्थों के एक 'खास घर' के रूप में 'मल' का उल्लेख करते हुए टोडरमल को कायस्थ बताया है, परंतु इसके लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण पेश नहीं किया है। कुमार अनुपम ने लिखा है- "बताते हैं कि सन् 1573 की यमद्वितीया को जनकपुर से वाराणसी लौटते वक्त राजा टोडरमल पाटलिपुत्र में रुके और गंगा के दक्षिणी तट स्थित इसी चित्रगुप्त-घाट पर जाकर उन्होंने पाटलिपुत्र के कायस्थों के साथ मिलकर सामूहिक चित्रगुप्त-पूजा की। इस ऐतिहासिक स्थान की दुर्दशा देखकर वे इतने व्यथित हुए कि इसी स्थान पर श्री चित्रगुप्त भगवान का एक भव्य मंदिर बनाने का संकल्प लिया। वाराणसी जाकर उन्होंने काली कसौटी पत्थर का एक शिलाखंड तथा पत्थर तलाशने वाले निपुण कारीगर भिजवाए और अपने नायब कुँवर किशोर बहादुर को इस मंदिर के निर्माण की देखरेख का व्यक्तिगत रूप से भार सौंपा। लगभग एक वर्ष में मंदिर बनकर तैयार हुआ और सन् 1574 ई० यमद्वितीया के दिन पुनः पाटलिपुत्र आकर राजा टोडरमल ने भगवान चित्रगुप्त की काले पत्थर की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की और मंदिर का उद्घाटन किया। परंतु अपनी इन बातों के समर्थन में कुमार अनुपम ने कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं दिए। इस लेख में कई जगह उन्होंने अपने वाक्यों की शुरुआत "बताते हैं" परंतु "बताते हैं" से तो काम नहीं चलेगा, इतिहास-ग्रंथों का सबूत चाहिए। कहाँ राजा टोडरमल! अकबरी दरबार के 'नवरत्नों' में शामिल!! और इतनी बड़ी घटना कि उन्होंने चित्रगुप्त की मूर्ति बनवायी, चित्रगुप्त-मंदिर भी बनवाया, नौजरघाट, दीवान मुहल्ला पटना में, और मंदिर का स्वयं उद्घाटन भी किया, और कहीं कोई प्रमाण नहीं? इतिहास-ग्रंथों में कहीं कोई उल्लेख तक नहीं? निःसंदेह, कुमार अनुपम की यह कपोल-कल्पना है, मन-गढंत है; इतिहास की सच्चाई के साथ शरारत है। किसी भी इतिहास-ग्रंथ में इन बातों का कोई उल्लेख नहीं है।

'श्री चित्रगुप्त आदि मंदिर प्रबंधक समिति 8, पटना-सिटी की 'स्मारिका-2007' में डॉ० प्रकाश चरण प्रसाद ने "भगवान श्री चित्रगुप्त आदि मंदिर इतिहास की दृष्टि में" शीर्षक अपने लेख में लिखा है कि "टोडरमल बिहार के गया जिले के थे" परंतु इसके लिए उन्होंने किसी भी इतिहास-ग्रंथ का प्रमाण पेश नहीं किया।

अपने उसी लेख में डॉ० प्रकाशचरण प्रसाद ने लिखा है- "सन् 1573 में यमद्वितीया के दिन शंहशाह अकबर (1556-1605) के वज़ीरे ख़ज़ाना कायस्थ-रत्न राजा टोडरमल ने जनकपुर से दिल्ली लौटने के क्रम में परंपरा से चली आ रही भगवान चित्रगुप्त के पूजन-क्षेत्र में पूजा-अर्चना की थी। उस पवित्र स्थान के खंडहर को देखकर वे द्रवित हो उठे और दिल्ली लौटकर एक साल बाद 1574 के कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन अपने नायब कुँवर बहादुर के नेतृत्व में मंदिर को एक स्वरूप प्रदान कराया, कायस्थरत्न राजा टोडरमल के नंदघाट के भगवान चित्रगुप्त देव मंदिर, जो मुग़ल-शासक द्वारा तोड़ा गया था, उसका जीर्णोद्धार नहीं करवाया।" जब इतनी सारी बातें हो गयीं- इतनी बड़ी-बड़ी घटनाएँ घट गयीं- तब इतिहास ग्रंथों में कहीं कोई उल्लेख

तो मिलता? खेद है कि किसी भी इतिहास ग्रंथ में इन बातों का कोई ज़िक्र नहीं है। डॉ० प्रकाश चरण प्रसाद ने इतिहास ग्रंथों का कोई प्रमाण नहीं दिया कि–

1. सन् 1573 ई० में यमद्वितीया के दिन शहंशाह अकबर के वज़ीरे ख़जाना जनकपुर से दिल्ली लौटने के क्रम में 'नौजर-घाट (पटना) आए।' किस इतिहास-ग्रंथ में यह लिखा है ?

2. दिल्ली लौटकर एक साल बाद 1574 के कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया के दिन 'चित्रगुप्त मंदिर का जीर्णोद्धार' करवाया इसका कोई प्रमाण है क्या?

3. उक्त मंदिर 'मुगल-सेना के द्वारा' ही तोड़ा गया था किस पुस्तक में यह प्रमाण है? ये महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं तो किसी भी इतिहास-ग्रंथ में प्रमाण होना चाहिए। परंतु डॉ० प्रकाश चरण प्रसाद ने कोई प्रमाण पेश नहीं किया। अतः स्पष्ट है कि उनकी ये सारी बातें महज़ मनगढंत हैं, केवल बकवास हैं, सर्वथा अप्रामाणिक और इतिहास के साथ बलात्कार हैं।

पाटलिपुत्र (पटना) में हुए अखिल भारतीय कायस्थ महासभा 125वाँ राष्ट्रीय अधिवेशन 2008 के अवसर पर प्रकाशित 'स्मारिका' में रवीन्द्र किशोर सिन्हा ने ''कायस्थ कुल शिरोमणी (?) राजा टोडरमल'' शीर्षक अपने लेख में इतिहास-ग्रंथों का कोई साक्ष्य/प्रमाण दिए बिना ही लिखा है कि टोडरमल चम्पारण (बिहार) के कायस्थ थे। 'दैनिक विश्वमित्र' (कलकत्ता) के 19 सितम्बर 1944 में प्रकाशित भारत पथिक के लेख के उद्धरण-पर-उद्धरण देते हुए रवीन्द्र किशोर सिन्हा ने लिखा है कि टोडरमल हुंकारमल के बड़े पुत्र आशाध र दास के पोते के पड़पोते थे। ये हुंकारमल पंजाब प्रांत के बलेहपुर के रहने वाले थे और चम्पारण (बिहार) आकर बस गये थे। ये लोग जाति के कायस्थ थे। अकबर ने टोडरमल को बंगाल और बिहार का सूबेदार बनाकर भेजा था। सन् 1588 ई० में राजा टोडरमल बंगाल और बिहार के सूबेदार बने (रवीन्द्र किशोर सिन्हा का मत है)।

परंतु इन सारी बातों के लिए रवीन्द्र किशोर सिन्हा ने किसी भी इतिहास-ग्रंथ का कोई प्रमाण, कोई सबूत नहीं दिया। बस, भारत पथिक के उपर्युक्त लेख से ही उद्धारण-पर-उद्धारण दिए हैं। और, भारत पथिक का लेख भी क्या है– अपने-आप में हल्के ढंग से लिखा गया 'महज़ अखबारी लेख' है, यह कोई 'शोध -निबंध नहीं' है। 'दैनिक विश्वमित्र' (कलकत्ता) भी इतिहास की कोई शोध -पत्रिका नहीं है। भरत पथिक ने अपनी बातों के समर्थन में इतिहास-ग्रंथों का कोई प्रमाण नहीं दिया। इस प्रकार, रवीन्द्र किशोर सिन्हा का विवेचित उक्त लेख ही बालू की भीत पर है, प्रमाण-रहित, निराधार और व्यर्थ है। यह सर्वथा अप्रामाणिक और इतिहास के तथ्यों के साथ भ्रष्टाचरण है। अकबर ने टोडरमल को बंगाल और बिहार का सूबेदार बनाया ही नहीं था। बल्कि प्रख्यात इतिहासकार बी०एन० लूनिया ने तो साफ़ लिखा है कि 10 अगस्त, 1574 को पटना पर अकबर ने अधि कार कर लिया और रजबी ख़ाँ को ही दीवान नियुक्त किया था। (अकबर महान्- पृ० 102- प्रकाशक- लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा-3- सन् 1972 संस्करण) टोडरमल सूबेदार या दीवान तो नियुक्त ही नहीं हुए थे। हाँ अकबर के सैन्य अभियान में वे शामिल ज़रूर थे और विजय प्राप्त करने के उपरांत अकबर ने उन्हें पुरस्कार में झंडा और नगाड़े दिये थे। (द्रष्टव्य- अकबर-महान् पृ०- 102 बी० एन० लूनिया)

यहाँ तक तो हुई 'आस्था' की बात कि कुमार अनुपम, प्रकाशचरण प्रसाद और रवीन्द्र किशोर सिन्हा एवं कतिपय अन्य कायस्थ तथा उनके 'संघ-संगठन' टोडरमल को 'कायस्थ' मानते हैं और 'बिहार का' मानते हैं, परंतु 'इतिहास का सच' क्या है? इसे जानने के लिए मैंने गहरी छानबीन के सिलसिले में, सर्वप्रथम 15 अप्रैल, 2008 को 'ख़ुदा बख़्श ओरिएंटल पब्लिक लाइब्रेरी' पटना के निदेशक डॉ० इम्तयाज़ अहमद को पत्र लिखकर अपनी जिज्ञासा प्रकट की। उन्होंने मेरे पत्र का उत्तर देते हुए अपने पत्रांक-403 दिनांक 29.4.08 में लिखा- ''अकबर के दरवारी इतिहासकार बुल फ़ज़ल की रचना 'आईने अकबारी' में टोडरमल को खत्री लिखा गया है। इसकी पुष्टि कई अन्य मुग़ल-कालीन रचनाओं से भी होती है। उनके कायस्थ जाति से संबंधित होने की कोई प्रामाणिक सूचना मेरी जानकारी में नहीं है।''

इसके बाद 18 नवम्बर, 2008 को अपने साहित्यिक मित्र श्री राजभवन सिंह के साथ मैं स्वयं ख़ुदा बख़्श ओरिएन्टल पब्लिक लाइब्रेरी में गया और निदेशक डॉ० इम्तयाज़ अहमद के सौजन्य से मुझे अबुल फ़ज़ल की रचना 'आइने अकबरी' पढ़ने को मिली, जिसमें साफ लिखा है कि ''राजा टोडरमल का जन्म लाहौर में एक खत्री के घर में हुआ था।'' (आइने अकबरी- अबुल-फ़ज़ल-अनुवादक रामलाल पाण्डेय, प्रकाशक पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, पृष्ठ- 62 प्रथम-भाग- संस्करण 2000 ई०)।

तत्पश्चात् 20 नवम्बर 2008 मैंने पटना युनिवर्सिटी के सुविख्यात इतिहासविद्, गुरुवार प्रो० डॉ० बी० के० सिन्हा को फोन किया और अपनी समस्या बतायी। उन्होंने मुझे पटना संग्रहालय (म्यूजियम) स्थित बिहार रिसर्च सोसाइटी जाकर मुगल-कालीन इतिहास के विशेषज्ञों से मिलने की सलाह दी। तदनुसार मैं 25 नवम्बर 2008 को श्री राजभवन सिंह के साथ पटना संग्रहालय (म्यूजियम) गया और के०पी० जायसवाल रिसर्च सोसाइटी के निदेशक प्रो० डॉ० विजय कुमार चौधरी से मिला, उन्होंने मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ प्रो० डॉ० अनिल कुमार से इस प्रसंग में वार्ता करने का परामर्श दिया। प्रो० कुमार को मैंने

टोडरमल के संबंध में अबतक की अपनी जानकारी से अवगत कराते हुए प्रश्न किया-"क्या टोडरमल कायस्थ थे? क्या वे बिहार के थे?" प्रो० कुमार ने स्पष्ट कहा "टोडरमल खत्री थे। मैंने भी सुना है कि कुछ लोग टोडरमल को कायस्थ बतलाते हैं, लेकिन हमलोग इतिहासकार हैं- टोडरमल के कायस्थ होने का कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। इतिहास के अनुसार वे लाहौर (पंजाब) के खत्री थे।"

टोडरमल के संबंध में अब तक की अपनी गतिविधियों से मैंने गुरूवर डॉ० बी० के० सिन्हा जी को अवगत कराया तो उन्होंने मुझसे पूछा- "आप क्या कहना चाहते हैं ? टोडरमल कायस्थ थे?" मैंने उत्तर दिया-" नहीं! मैं वही कहना चाहता हूँ जो इतिहास का सच है।"

टोडरमल के संबंध में इतिहास का सच क्या है? मेरे दिमाग में यह सवाल कौंधता रहा। 19-6-2008 को, मैंने रवीन्द्र किशोर सिन्हा, अध्यक्ष, 'श्री चित्रगुप्त आदि मंदिर प्रबंधक समिति' दीवान मुहल्ला, नौजर घाट, पटना को पत्र लिखकर टोडरमल के संबंध में अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। उन्होंने अपने पत्रांक-2008/212 दिनांक 29-6-2008 के अनुसार मुझे सूचित किया- "ख़ुदा बख़्श ख़ाँ लाइब्रेरी के निदेशक डॉ० इम्तयाज अहमद को भी यह जानकारी दे दें कि राजा टोडरमल के बारे में बहुत-से लोगों को भ्रम है कि वे पुराने पंजाब (वर्तमान में पाकिस्तान) के रहने वाले थे, जबकि यह धारणा सर्वथा ग़लत है।"

उनके उक्त पत्र का उत्तर देते हुए मैंने 18-8-2008 के अपने पत्र में उन्हें लिखा कि-"आईने अकबरी एक प्रामाणिक ग्रंथ है और आपने तो अपने लेख में जिस 'भरत' (कहीं-कहीं पर 'भारत') पथिक- लिखित आलेख का बार-बार उल्लेख किया है, वे 'भरत या भारत पथिक' कहीं से भी इतिहास-कार नहीं हैं, महज़ अख़्बारनवीस है। अबुल फजल की तुलना में -भरत' या 'भारत पथिक' को महत्त्व नहीं दिया जा सकता। महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि जिस "दैनिक विश्वमित्र" में उनका आलेख छपा था, वह महज दैनिक अख़बार है, कोई शोध-पत्रिका नहीं है। अतः भरत या भारत पथिक के उक्त आलेख का कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक महत्व नहीं है। टोडरमल की 'वंशावली' प्रस्तुत कर देना ही कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं बन जाता- उसे (वंशावली को) इतिहास के ग्रंथों से प्रमाणित किया जाना चाहिये।" रवीन्द्र किशोर सिन्हा ने मेरे इस पत्र का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

इस बीच, मुझे पता चला कि पटना सिटी में खत्रियों के किसी संघ-संगठन ने इसका प्रतिवाद किया था कि टोडरमल कायस्थ थे और टोडरमल पर एक पुस्तिका भी वितरित की गयी थी। उक्त पुस्तिका को प्राप्त करने के लिए दिनांक 11-7-2008 को मैंने उसके लेखक सीताराम टंडन को उनके आवासीय पते पर पत्र भेजा (13/44-विकास नगर, लखनऊ-226022 (U-P)। उन्होंने दिनांक 18-7-2008 के अपने पत्र में मुझे सूचित किया-

"राजा टोडरमल पर अपनी लिखी पुस्तक कोरियर से भिजवा रहा हूँ। उसका मूल्य 20 रु० आप मनीआर्डर द्वारा मुझे भेज दें।" तदनुसार मैंने मनी आर्डर भेज दिया और दिनांक 25-7-2008 को उनकी पुस्तक मुझे प्राप्त हुई- शीर्षक था "राजा टोडरमल" पुस्तक को मैं बहुत मनोयोग से पढ़ गया।

परंतु इसके पहले अब इस पर विचार करना ज़रूरी है कि टोडरमल के संबंध में इतिहास-ग्रंथों में क्या लिखा गया है?

(1) Image of Patna... N. Kumar... Govt, of Bihar, Gazetters Branch, Revenue Department, Patna, 1971

इस किताब के Introduction में Mediavel Times के संदर्भ में चर्चा है कि सन् 1611 में शेरशाह ने पटनासिटी में गंगा नदी के तट पर एक किला बनवाया और यहीं से अकबर ने उत्तर बिहार के बाग़ी अफ़गानों के ख़िलाफ़ युद्ध का संचालन किया- P.XI लेकिन टोडरमल द्वारा पटना में 'चित्रगुप्त मंदिर' बनवाने का कोई जिक्र नहीं है। Chapter-II Architecture & Sculpture में भी 'चित्रगुप्त मंदिर' की कोई चर्चा नहीं है।

अकबर द्वारा पटना पर कब्जा जमाने के बाद टोडरमल ने यदि कोई 'चित्रगुप्त-मंदिर' बनवाया होता तो अवश्य ही कहीं-न-कहीं कुछ भी जिक्र हुआ होता क्योंकि टोडरमल अकबर के ख़ास आदमी थे और अकबर के सैन्य अभियान में शामिल थे।

इस 'Image of Patna' पुस्तक के Chapter-VI Historical Monuments of Patna' शिर्षक अध्याय में भी 'चित्रगुप्त-मंदिर' का नाम नहीं आया है। अतः टोडमरल द्वारा 'चित्रगुप्त मंदिर' के निर्माण की बात फ़र्ज़ी है, मनगढंत है।

(2) अकबर महान-बी०एन० लूनिया-प्रकाशक : लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा-3 सन् 1972 संस्करण

लेखक के 'प्राक्कथन' के अनुसार अकबर पर लिखी गयी इन विद्वानों की पुस्तकों को आधार बनाया गया है-

1. डॉ० आशीवादी लाल श्रीवास्तव- अकबर महान् भाग-I एवं II, 2, विनसेंट स्मिथ- Akbar the Great 3. डॉ० जदुनाथ सरकार (क) Studies is Mughal India, (ख) Mughal Administration (ग) Military Hisory of India, (घ) India Through the Ages.

उक्त इतिहास ग्रंथ 'अकबर महान्' के लेखक बी० एन० लूनिया के अनुसार टोडरमल का जन्म उत्तर प्रदेश के अवध में सीतापुर जिले के लहरपुर ग्राम में एक खत्री परिवार में हुआ था- पृ० 507. टोडरमल का देहावसान 8 नवम्बर 1589

को लाहौर में हुआ- पृ० 510 दस अगस्त- 1574 को पटना पर अकबर का अधिकार हो गया और अकबर ने रजबी खाँ को दीवान नियुक्त किया। राजा टोडरमल को पुरस्कार में झंडा और नगाड़े दिए- पृ० 102

इस प्रकार स्पष्ट है कि (1) टोडरमल जाति के खत्री थे, (11) टोडरमल दीवान या सूबेदार नहीं बहाल हुए थे, उन्हें झंडा और नगाड़े जो मिले हों, और (111) टोडरमल ने कोई 'चित्रगुप्त-मंदिर' वग़ैरह नहीं बनवाया था- नौजर घाट दीवानमुहल्ला में। ये सारी बातें इतिहास की दृष्टि से बिल्कुल गलत हैं।

(3) भारतवर्ष का संपूर्ण इतिहास (दूसरा भाग)

लेखक- श्री नेत्र पांडेय-प्रकाशक : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 15वाँ संस्करण, सन् 1977-78

इस इतिहास-ग्रंथ में लिखा है कि 20 जून, 1574 को अकबर ने पटना के लिए प्रस्थान किया, 4 अगस्त, 1574 को उसने पटना पर अधिकार कर लिया, टोडरमल भी अकबर के अभियान में शामिल थे- पृ०92-93 बस, इतना ही।

लेकिन ऐसा नहीं कि टोडरमल बिहार के सूबेदार या दीवान नियुक्त हुए। नौजरघाट, दीवानमुहल्ला (पटना) में टोडरमल द्वारा 'चित्रगुप्त-मंदिर' बनवाये जाने का भी उल्लेख नहीं है।

4. Medieval India (Part-II) Satish Chandra- N.C.E.R.T. Publication; June-1978

इस इतिहास-पुस्तक के पृ० 145 पर पटना पर अकबर के आक्रमण और 1576 में बिहार पर अकबर के पूर्ण अधिकार का तो उल्लेख किया गया है, परंतु टोडरमल के द्वारा पटना में चित्रगुप्त-मंदिर बनवाये जाने का कोई उल्लेख नहीं है। टोडरमल के बिहार के सूबेदार या दीवान बनाये गये इसका भी कहीं कोई ज़िक्र नहीं हैं।

(5) पर्यटन विभाग बिहार सरकार के निदेशक द्वारा प्रकाशित बिहार-दर्शन में पटना के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक भवनों में कई मंदिर-मस्जिदों का उल्लेख हुआ, परंतु कहीं भी चित्रगुप्त मंदिर, दीवानमुहल्ला, पटना-सिटी के नाम तक का कोई उल्लेख नहीं है। इससे भी यह प्रमाणित होता है कि उक्त चित्रगुप्त-मंदिर न ऐतिहासिक है, न प्राचीन है। टोडरमल-द्वारा उसके निर्माण कराए जाने की बात बिल्कुल झूठ है, कपोल-कल्पना है, मनगढंत है इतिहास की सच्चाई के साथ खिलवाड़ है।

(6) हिन्दी साहित्य का इतिहास- लेखक आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल- प्रकाशक काशी नगरी प्रचारिणी सभा- अठरहवाँ पुनर्मुद्रण संख्या 2035 वि० इस ग्रंथ में स्पष्ट लिखा गया है कि टोडरमल जाति के खत्री थे। (पृ० 138)

(7) Patna through the Ages, Patna College Publications. Series. No I. Edited by Q. Ahmad, Prof. of History Patna University, Patna. First Published 1988 Published by Janaki Prakashan, Patna-4

इस इतिहास-ग्रंथ में पृ० 73 पर लिखा गया है कि अकबर ने 1574 में पटना पर आक्रमण किया और पटना तथा बिहार अकबर के अधीन हो गया। कब्ज़े/फ़तह के बाद अकबर ने अपने साम्राज्य को बारह सूबे में गठित किया- बिहार भी एक सूबा बना, पटना ही राजधानी रही, कई सूबेदार हुए जो बादशाह के करीबी रिश्तेदार या शाहज़ादे थे।

परंतु यहाँ यह लक्ष्य करने की बात है कि बिहार के सूबेदार के रूप में टोडरमल का तो कहीं नाम नहीं आया है और टोडरमल द्वारा 'चित्रगुप्त-मंदिर' के निर्माण का भी कहीं कोई उल्लेख नहीं है।

(8) आईने अकबरी- लेखक अबुल फ़ज़ल- प्रथम भाग- अनुवादक रामलाल पांडेय- प्रकाशक पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर सन् 2000 संस्करण

यह सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ है, क्योंकि यह अकबर के ही समकालीन, बहुत नजदीकी, प्रभावशाली और अकबरी दरबार के नवरत्नों में शामिल अबुल फ़ज़ल की रचना है। इस पुस्तक में साफ़ लिखा गया है कि राजा टोडरमल का जन्म लाहौर में एक खत्री के घर में हुआ था।

(9) ''राजा टोडरमल'' लेखक सीताराम टंडन- प्रकाशक अखिल भारतीय खत्री महासभा एवं श्री खत्री उपकारिणी सभा- लखनऊ

इस पुस्तक में निज़ामुद्दीन के ग्रंथ 'तबकाते अकबरी' (भाग- 2, पृष्ठ 433, अंग्रेज़ी अनुवाद पृ० 660) के हवाले लिखा गया है कि टोडरमल खत्री जाति के थे। शाहनवाज खान अब्दुल हई ने भी 'मसीरूल उमरा' (पृ० 123 अंग्रेजी अनुवाद पृ० 951) शीर्षक अपनी पुस्तक में टोडरमल को खत्री लिखा है। इलिएट और डासन की पुस्तक History of India As told by its Historians (पृ० 303) में लिखा है कि टोडरमल खत्री थे।

टोडरमल के खत्री होने के संबंध में कई विद्वज्जन एकमत हैं-

सैयद मोहम्मद लतीफ (लाहौर- पृ०-30), कैप्टन वान नोट (कैसरे अकबर भाग-1, अंग्रेज़ी अनुवाद- पृ० 145), विन्सेंट स्मिथ (Akbar the Great Mughal- P. 175), डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव। (Akbar the Great P. 346)

निष्कर्ष :- इस प्रकार, ऊपर के विश्लेषण और विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि अकबर के दरबार के नवरत्नों में शामिल राजा टोडरमल जाति के खत्री थे और इस संबंध में सभी इतिहासकार एकमत हैं। राज टोडरमल कायस्थ नहीं थे। राजा टोडरमल नि:संदेह लाहौर के थे, बिहार के नहीं। प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथों में इस बात का कहीं कोई उल्लेख नहीं है कि टोडरमल ने पटना-सिटी (बिहार) के दीवानमुहल्ला (नौजरघाट) में कभी कोई चित्रगुप्त मंदिर बनवाया था।

संपर्क : दरियापुर गोला, बाँकीपुर, पटना-800 004

सामाजिक विकास में संस्कृत की भूमिका

❍ लक्ष्मीकांत मिश्र

संस्कृत भाषा और साहित्य हजारों वर्षों से भारतीय समन्वयात्मक संस्कृति का मार्गदर्शक तथा सार्वभौम मानवमूल्यों का उद्घाटक और परिपोषक रहा है। अनेक राजनीतिक और सामाजिक झंझावातों के बीच से गुज़रते हुए राष्ट्रीय उत्कर्ष का प्रतीक यह साहित्य आज जिस अवस्था को प्राप्त हो चुका है वह गंभीर चिंता का विषय है। समय की धूल की मोटी परत के नीचे दबे, अपनी पहचान खो चुके इस अनमोल ख़जाने का, श्रेष्ठ मूल्यों और संभावनाओं के बावजूद घोर उपेक्षा का शिकार बन जाना दुर्भाग्यपूर्ण है। अतएव इस भाषा और साहित्य की आंतरिक क्षमता और महत्ता को दृष्टि में रखकर सामयिक विकास के निमित्त एक उपयुक्त विचार नम्र रूप से निवेदित है।

संस्कृत भाषा सदा से प्रबुद्धजनों की भाषा ही रही है। अनगिनत साधकों, वैज्ञानिकों और विद्वानों द्वारा मानव सभ्यता को प्रदान किए गए बहुमूल्य ज्ञान-रत्नों का यह अक्षय भंडार है। प्राचीनकाल में लेखनकला (छापखाने आदि) के समुचित विकास नहीं हो पाने और उच्चकोटि के विद्वानों के बीच का माध्यम होने के कारण इसकी अभिव्यंजनाशैली काव्यात्मक और अलंकारिक है, जो साधारण पाठकों के लिए दुरूह भी है। अतीत में नवीन विचारों के प्रसारण, मतभेदों के निराकरण तथा सामाजिक नियमों का स्वरूप तय करने के निमित्त आधार के रूप में वैज्ञानिक विश्लेषणों की युक्तियुक्त व्यवस्था आर्यों द्वारा निर्धारित थी, जिसे "शास्त्रार्थ" कहा जाता था। सर्वसम्मत तार्किक निर्णय पर पहुँचने के लिए इस व्यवस्था में शंकाओं और विवादों का निराकरण स्वतः होता चलता था। मानव कमज़ोरियों और पूर्वाग्रहों पर नियंत्रण रखने, उनसे ऊपर उठकर भिन्न स्थितियों का निरपेक्ष अध्ययन करने और तदनुसार समुचित व्यवहार के लिए यह व्यवस्था इतनी प्रभावकारी थी कि इस उदार और विवेकशील प्रणाली के बल पर ही आर्यों ने इस संपूर्ण महाद्वीप के मानव समाज (भिन्न प्रजातियों तक) को एक बृहत परिवार के सदस्यों की तरह संगठित रखने में अनुपम सफलता प्राप्त की थी। आर्यों की सत्य के प्रति यह निष्ठा न केवल उनके वैज्ञानिक अन्वेषणों और भौतिक उपलब्धियों में सहायक थी, बल्कि उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि-जीवन के प्रति निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टि थी। उनकी कालातीत घोषणा "एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" उनकी अहंकारशून्यता का प्रमाण है। भिन्न भौगोलिक और सामाजिक खण्डों में समान रूप से प्रवाहित मानवीय अन्तर्धारा के दर्शन ने उन्हें "विश्वबंधुत्व" की उदार घोषणा की प्रेरणा दी। इस प्रकार हजारों वर्षों से उनकी निष्ठा और कठिन श्रम द्वारा सिंचित विज्ञान के कल्पवृक्ष में लगे फलों को व्यावहारिक जीवन में सहज रूप से उपयोग में लाने वाले आर्यों के उत्तराधिकारी के लिए आज अतीत की उपलब्धियों के प्रमाण प्रस्तुत करना भले ही संभव नहीं हो; किंतु जीर्णवस्त्रों के फट जाने पर जीवन दर्शन नहीं बदल जाते। तीन या चार हजार वर्ष पूर्व कपिल, कणादि जैसे महान् आर्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रवाहित ज्ञानगंगा से सिंचित समाज के लिए अतीत का पूरा हिसाब सुरक्षित रख पाना न आवश्यक ही रहा न संभव ही। किंतु आज महान वैज्ञानिक न्यूटन और आइन्स्टीन द्वारा तथ्यों की संपुष्टि विश्वास को बल देता है।

हज़ारों वर्षों से (बिना पुनर्विचार के) उपयोग में लाए जाने के कारण समय के चढ़ाव-उतार में संस्कृत भाषा और साहित्य की शब्दावलियाँ और आख्यान (रूप बदल जाने से) बहुत अंशों में अपना मौलिक अर्थ खो चुके हैं। इससे मानव कमजोरियों के प्रभाव में अनेक प्रकार के अंधविश्वासों को अपना स्थान बनाने का अवसर मिल गया है। अनेक विद्वान उन्हीं विकृत स्वरूपों को आधार मानकर भटकापव के कुहासे से समाज को भरने में जाने-अनजाने सहायक होते रहे हैं। पुराणों में वर्णित प्रतीकात्मक आख्यानों में निहित सूक्ष्म संकेतों को स्थूल दृष्टि से देखने पर अर्थ का अनर्थ होना तो स्वाभाविक ही है। श्रीमद्भागवत महापुराण (चतुर्थ स्कन्ध) में वर्णित पुरंजनोपाख्यान जैसे स्पष्ट निर्देशों के बावजूद विद्वतजन तो अपनी रुचि, और वैचारिक स्तर के अनुसार ही उनकी व्याख्या करते रहे हैं। प्रतीकात्मक प्रयोग उच्च कोटि का साहित्यिक प्रयोग है। परंतु सुसंस्कृत वातावरण के बदल जाने पर उनका अवमूल्यन होना स्वाभाविक भी है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में साहित्य का अध्ययन भी प्रायः महत्व खोता जा रहा है। किसी खास विषय के विशेषज्ञ की मांसिकता उनका संपूर्ण व्यक्तित्व प्रायः उसी विषय से संबंधित क्षितिज में सिमटता जाता है। पूर्वकाल में विशेषकर संस्कृत के उत्कर्षकाल में जीवन के सारे आयामों के अंतःस्वरूपों की अनुभूति व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए आवश्यक मानी जाती थी। इसलिए उस समय साहित्य का अध्ययन मात्र विलक्षण आनन्द का ही नहीं-व्यापक दृष्टि का दाता भी था। आज की वस्तुपरक शिक्षा प्रणाली में उसके अनेक मूल्यवान पहलू ओझल हो रहे हैं। ऊपरी सतह की भौतिक औपचारिकताएँ, जो आज प्रायः प्रमुख हो रही है, अपने आधारभूत मूल्यों का सही सूचक नहीं बन सकतीं। ऐतिहासिक और सामाजिक विपल्वों के परिणामस्वरूप समय-समय पर आयोजित चेतना के नवीकरण की सभ्यतम

प्रणाली-''शास्त्रार्थों'' की परंपरा के लुप्त हो जाने के कारण भी मूलस्वरूप से उनका भटकाव क्रमशः बढ़ता ही गया। फलतः इस भाषा और साहित्य द्वारा व्यक्त अनेक प्रगतिवादी विचार आज प्रतिगामी हो गए हैं। संस्कृत भाषा और साहित्य आज अनुपयोगी और विज्ञान-विरोधी भी समझे जाते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के साथ सामंजस्य नहीं बैठा पाने के कारण उनकी सार्थकता पर आज सार्थक प्रश्न चिह्न लग रहे हैं।

संस्कृत साहित्य में इन विसंगतियों और भटकाव के मुख्यतः दो चरित्र हैं। पहला, भाषा और साहित्य की संरचना से संबंधित है। यज्ञ, तप, मंत्र, पूजा आदि अनेक पदों के अर्थ अपने मौलिक रूपों से बहुत दूर जा पड़े हैं। मिसाल के लिए, अग्नि के आविष्कार के साथ ही रासायनिक क्रियाओं और उनके माध्यम से जीवन की सुविधाओं के निमित्त अनेक उपयोगी द्वार खुल गए। खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त धातुओं, वनस्पतियों और अन्य उपयोगी वस्तुओं के रासायनिक परिवर्तनों ने औषधि-निर्माण आदि विकास की अनेक दिशाओं में बड़ी क्रांति ला दी। आर्यों के लिए ''यजन'' का महत्त्व स्वाभाविक तौर पर ही बहुत बढ़ गया। विकास का सबसे बड़ा साधन ही ''हवन'' और ''यज्ञ'' हो गया। प्राचीन वैज्ञानिक- ''ऋषियों'' के लिए वैज्ञानिक प्रयोगों के क्षेत्र में यह सबसे प्रथम और सबसे बड़ी ''क्रांति'' का आधार तैयार हो गया। ''ऋषि-मुनि'' और ''यज्ञ'' का अन्योन्याश्रय संबंध हो गया। इस क्षेत्र में क्रमिक रूप से तकनीकों के भी बहुत विकास हुए जो बाद में प्रकारांतर से ''कर्मकाण्डों'' का रूप ले लिया। स्थूल भौतिक साधनों से संपन्न ''कर्मकाण्ड'' का प्रभाव साधारण जनों के लिए अधिक व्यापक हो गया। समय के प्रवाह में जब परिस्थितियाँ बदल गईं और अनेक कारणों से विकास अवरूद्ध हो गए, तो कर्मकाण्डों की स्थूल औपचारिकताएँ, लोकाचार के साथ घनिष्ठ संबंध होने के कारण भटकती हुई भी ज़िंदा रह गई, बल्कि अधिक बलवान हो गई; किंतु मूल उद्देश्य क्रमशः ओझल होते चले गए। अधिक समय तक व्यवहार में आने के कारण ये कर्मकाण्ड आस्था के साथ भी जुड़ गए। परंतु एक सुविकासित व्यवस्था अपने मूल उद्देश्य से च्युत होकर कागज़ के फूलों की भाँति प्राणहीन परिपाटी बन गई। इसी प्रकार भाषा और साहित्य से संबंधित अनेक बिंदुओं पर पुनर्परिभाषा और पुनर्व्याख्या की आवश्यकता आज अधिक है। संकीर्ण अँधेरी गलियों में दिशाहीन भटकते हुए अविद्या ग्रस्त समाज को विश्व चेतना के उदार मंच पर विद्या के प्रकाश से भर पाना ज्ञानचक्षु विद्वानों और विश्वविद्यालय द्वारा सरस्वती की सर्वश्रेष्ठ पूजा है।

विसंगतियों और भटकाव का दूसरा पहलू आस्था से संबंधित है, जहाँ तर्कों और वैज्ञानिक विश्लेषणों की गुंजाईश प्रायः नहीं होती। भिन्न मानव समुदायों की आस्थाओं के स्वरूप भिन्न हो सकते हैं। इनमें बाहरी हस्तक्षेप सार्थक नहीं होते। किंतु भारत में आस्था से संबंधित मुख्य विचारधारा ''सनातन मार्ग'' अर्थात् ''हिंदू'' का है, जो बहुसंख्यक है और जिसका प्रभाव पूरे राष्ट्रीय जीवन पर अधिक पड़ता है। इसे पूर्व में ''ब्राह्मण धर्म'' भी कहा जाता था। सनातन मार्ग प्रकृति के सनातन सार्वभौम नियमों पर आधारित रहा है। इसलिए इसके आचार का निर्धारण प्राकृतिक विभूतियों के स्वभावों के अनुकूल ही किए जाते थे। इसी से इसका स्वरूप वैज्ञानिक विश्लेषणों ''शास्त्रार्थों'' के आधार पर ही तय किए जाते थे। इस वैज्ञानिक प्रणाली के काफी समय से अवरूद्ध हो जाने के कारण पुरानी मान्यताओं और औपचारिकताओं का प्रचलन ही स्वरूपतः आज भी व्यवहार में है। समय के प्रभाव से इनका अपने मूल स्वरूप से संपर्क प्रायः भंग हो चुका है। परिवर्तनों के इस पहचान-संकट की अवस्था में एक तथ्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक है कि पूर्व में वैज्ञानिक विश्लेषणों पर आधारित इस विचारधारा में मानव कमजोरियों की उपज ''चमत्कार'' का कोई स्थान नहीं था। प्रख्यात् ग्रंथ ''रामायण'' में सेतुबंध प्रकरण इसका स्पष्ट उदाहरण है। साहित्यिक भाषा में राम द्वारा समुद्र को रास्ता देने के लिए चेतावनी देने पर कवि ने अलंकारिक रूप से समुद्र द्वारा ही इसे असंभव बताकर अन्य व्यावहारिक (मानवोचित) तरीके से सेतुबन्ध की सलाह दिलायी। शास्त्रों और पुराणों में, विद्वानों के वैचारिक स्तर के अनुकूल अलंकारिक भाषा में दिए गए स्पष्ट संकेतों के बावजूद यह क्षेत्र आज अँविश्वासों, संकीर्ण मान्यताओं और कटुताओं से बोझिल हो रहे हैं। मानव कमजोरियों के दुष्प्रभावों से आज समाज अनेक छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित परस्पर अलगाव और अशांति के वातावरण में व्यथित अपनी उज्जवल परंपरा पर कलंक की व्यथा का अनुभव कर रहे हैं। इस अवस्था के लिए भी संस्कृत भाषा और साहित्य की (समय के प्रभाव से) विकृत्ति बहुत अंशों में उत्तरदायी है।

किसी भी साहित्य के लिए सबसे महत्त्व की बात है उसका वर्त्तमान समाज की समस्याओं के प्रति संवेदनशील और सार्थक होना। इस दृष्टि से यह साहित्य आज साधारणतः अतीत की बात और मात्र पूजा-पाठ से संबंधित थोड़े से लोगों की रुचि की बात समझी जाती है। भारतीय समाज अत्यंत ही पुराना और बहुआयामी है। यह समाज अतीत में अनेक प्रकार के राजनैतिक-सामाजिक प्रयोगों की दौड़ से गुज़र चुका है। इतिहास इस प्रकार की घटनाओं की शृंखला सूची तैयार करने में रुचि रखता है। परंतु भारत में प्राचीन विद्वानों की रुचि इतिहास में कम और घटनाओं के कालातीत चरित्रों में अधिक थी। पुराणों

में घटनाओं के प्रतीकात्मक वर्णन ही उपलब्ध हैं। किंतु उनके पीछे के सूक्ष्म संकेत जीवन में सत्य के प्रति व्यावहारिक आग्रह रखते हैं। हमारे वर्त्तमान समाज की ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका स्वरूप और निदान हमें पुराणों साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में न मिले। उदाहरण के लिए आज दुनिया में अनेक शक्तियाँ हिंसात्मक क्रांति के द्वारा अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए कृतसंकल्प है। ऊपर से देखने पर उनके तर्क बहुत उपयुक्त प्रतीत होते भी हैं, परंतु ''परोक्षार्थ'' का दर्शन कराने वाले हमारे शास्त्र का अनुभव भिन्न है। संस्कृत साहित्य द्वारा प्रतीकात्मक प्रस्तुति- काली की प्रतिमा इसका कालातीत उत्तर है। काली हिंसात्मक क्रांति का प्रतीक हैं। हिंसा का आवेग महान् पुरुषों को भी अपनी आगोश में लेकर भ्रम में डाल देता है। योगेश्वर कृष्ण शस्त्र न उठाने की अपनी प्रतिज्ञा भूल जाते हैं। दानवों के संहार में उठी काली की नंगी तलवार पर जब हिंसा का नशा सवार हो जाता है, तब दानवों के समाप्त हो जाने पर वह अपने पक्ष के देवों की ही हत्या करने लगती है। इस आत्मघाती हिंसात्मक अबाधशक्ति को केवल ज्ञानचक्षु शिव की सद्भावना के माध्यम से ही शांत किया जा सकता है। फ्रांस की राज्यक्रांति से लेकर चीन के समाजवादी नेता माओ (उनके अंतिम समय की प्रतिकूल अवस्था की लाचारी) और स्वनिर्मित हिंसा के आत्मघाती चंगुल से निकलने के लिए छटपटाता पाकिस्तान- सब इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

पूर्वकाल में जीवन को समग्र रूप से देखने के हमारे जीवनदर्शन के अनुरूप ''सहित'' तथा ''हित'' के साथ संस्कृत का ''साहित्य'' हमारी सोच का प्रतिनिधित्व करता था। वैज्ञानिक उपलब्धियों और विश्लेषणों को भी काव्यात्मक शैली में व्यक्त करना उस समय का साहित्यिक तरीका था। परंतु आज समय की तेज़ रफ़्तार जीवन के जो एकांगी और वस्तुपरक रूप प्रभावी हैं, उनके अनुरूप हम अपनी क्षमता और साधनों को तैयार करने में पिछड़ रहे हैं। हमें अपनी उन प्राचीन उपलब्धियों की व्याख्या आज की भाषा में आवश्यक है। इससे न केवल हमारी चेतना को बल मिलेगा, बल्कि वैचारिक मनोहीनता भी दूर होगी। यह काम उच्च कोटि के विद्वानों का है। परंपरा से प्राप्त सकारात्मक (किंतु ओझल हो रहे) पहलुओं को निखारना और नकारात्मक पहलुओं पर नियंत्रण कर उन्हें सकारात्मक दिशा में मोड़ना आज की सबसे बड़ी बौद्धिक चुनौती है। साथ ही अपने मौलिक उदार विचारों के बल पर नई दुनिया की भिन्न विचारधाराओं के साथ भी सौहार्द्र स्थापित करना आज की आवश्यकता है। इसके लिए अपने कुसंस्कारों पर विजय पाना भी हमारे सरस्वती-पुत्रों का बड़ा दायित्व है। विशेषज्ञता के आधार पर विकास को तीव्र गति देने के निमित्त स्थापित (पूरक रूप में) हमारी वर्णव्यवस्था आज परस्पर अलगाव (ऊँच-नीच) पैदा करने वाला नुक़्सानदेह जातिवाद के रूप में विकृत हो गई है। इसलिए पूर्वाग्रहमुक्त राष्ट्रीय चेतना के आधार पर इनकी पुनर्व्याख्या विकास के लिए परम आवश्यक है, जो उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा ही संभव है। दुर्भाग्यवश चेतना पर रूढ़िप्रियता के वर्चस्व के कारण सामाजिक चक्षु स्वरूप हमारे मार्गदर्शक विद्वान भी आज अनिश्चय की स्थिति में हैं। इसलिए उन दीपों को ही जलाकर प्रखर बनाना प्रथम आवश्यकता है जो समाज को प्रकाश दे सकें। आज हमें ख़तरे बाहर से नहीं- अंदर से हैं। हमें ख़तरे अपनी संकीर्णताओं से है- अपनी किंकर्त्तव्यमूढ़ता से है यदि हम अपने पूर्वज ऋषियों द्वारा प्रदत्त आप्त वाक्यों पर पड़ी समय की धूल की मोटी परतों को हटाकर अपने मौलिक रूप ''अमृत्स्य पुत्राः'' को वापस ला सकें, तो न केवल हमारा कायाकल्प हो सकता है, बल्कि हम पूर्व की तरह पूरे क्षेत्र को सुवासित कर सकते हैं।

प्रकृति के सामान्य नियमों के अनुसार छोटे कीड़े, कछुए प्रतिकूल परिस्थिति में अपने अंगों को समेटकर स्थिर हो जाते हैं; और अनुकूल स्थिति आने पर पुनः फैलाकर चलने लगते हैं। हमारे लिए भी उसी प्रकार अपनी क्षमताओं और संभावनाओं के साथ फैलने और चलने का समय है। अतीत का गौरव किसी जाति के लिए आगे बढ़ने का प्रेरणास्रोत होता है और उसकी उपेक्षा मनोहीनता देने वाली। हमारी राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक संस्कृत-साहित्य परिष्कृत रूप में हमारे सर्वांगीन विकास का आधार बन सकता है। आज के विकसित समाज में तर्कों और अच्छे विचारों को सुनने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। जिस समाज में पूर्वकाल में नम्रता की प्रतिमूर्ति महामानव ईसामसीह को सत्य कहने पर अपनी ही जाति के लोगों द्वारा सूली पर चढ़ा दिया गया, वैज्ञानिक गैलीलियो को प्राणदण्ड की नौबत आ पहुँची; वही समाज आज हमारे (उनके लिए विदेशी और विधर्मी के) विचारों-वेदमंत्रों को सर आँखों पर ले रहा है। आज अमेरिका के सिनेट का प्रारंभ वेद मंत्रों से होता है। हमारे लिए वैचारिक समाजिक क्रांति का यह अनुकूल समय है। इसलिए चेतना के संवाहक हमारे विद्वतजन से उनके पूर्वज ऋषियों की स्वाभाविक अपेक्षा है कि वर्त्तमान अँधकार से प्रकाश की ओर जाने के लिए मार्गदर्शन करें। उच्च कोटि के विद्वानों की संगोष्ठी में इस वैचारिक क्रांति के लिए समुचित कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। सरस्वती के पुत्रों द्वारा सरस्वती की- अपनी जाति की- संपूर्ण मानवता की यह सर्वोत्कृष्ट पूजा है। अपने पूर्वज ऋषियों के पितृऋण की अदायगी का यह सबसे उपयुक्त अवसर भी है।

संपर्क : 3/12, पश्चिम महेशनगर,
पटना- 24
फोन-0612-2266364

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

○ डॉ० महेशचंद्र शर्मा

राहुल सांकृत्यायन का जन्म आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) के एक छोटे-से 'पन्दहा' जनपद गाँव में 09 अप्रैल, सन् 1893 ई० को हुआ था। उनका मूल नाम केदारनाथ पांडेय था। सन् 1903 ई० में (10 वर्ष से कम उम्र में ही) वह घर से निकल गए। सबसे पहले वह बनारस (अब वाराणसी) गए- तत्पश्चात् सन् 1907 और सन् 1909 में आत्मनिर्भर बनने के लिए वह कलकत्ता (अब कोलकाता) गए। सन् 1910 से उनकी यात्राएँ आरंभ हुईं। उन्होंने 'हिमालय' को अपना गन्तव्य बनाया। वह समूचे भारतवर्ष में घूमते रहे- लगभग 11 वर्ष तक इधर-उधर भटकते रहे। सन् 1926 ई० में वह पुनः हिमालय में गए। सन् 1927 में वह 'श्रीलंका' गए। सन् 1930 ई० में उन्होंने बौद्ध धर्म से प्रभावित-प्रेरित होकर अपना बौद्ध नाम 'राहुल सांकृत्यायन' रख लिया। उनका यही नाम जीवनपर्यन्त रहा। सन् 1932 ई० में वह यूरोप गए, जहाँ फ्रांस, जर्मनी तथा इंगलैण्ड की ज़िंदगी को उन्होंने बहुत निकट से देखा। सोवियत रूस में लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में उन्होंने प्राध्यापन-कार्य किया तथा मध्य एशियायी सोवियत गणराज्य का विशेष अध्ययन किया। बाद में उन्होंने 'मध्य एशिया का इतिहास' (दो खण्डों में) वृहदाकार ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ पर राहुल जी को सन् 1958 ई० का 'साहित्य अकादमी' (हिन्दी) पुरस्कार प्रदान किया गया। मधुमेह, ऊँच्च रक्तचाप और हृदय-विकार ने उनके स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रहार किया। दार्जिलिंग में 14 अप्रैल, सन् 1963 ई० को राहुल जी का तिरोधान हुआ।

राहुल जी को जीवन में ठहराव बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। उनका जीवन यायावरी की एक लंबी महागाथा है। उनका लगभग संपूर्ण जीवन एक महायात्री का जीवन माना जा सकता है। इसीलिए राहुल जी ने अपनी आत्मकथा को 'मेरी जीवन-यात्रा' का नाम दिया है।

राहुल सांस्कृत्यायन का व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली, प्रेरक एवं प्रोत्साहक रहा है। हमारे यशस्वी साहित्यकार प्रभाकर माचवे (शीर्षक- 'राहुल सांकृत्यायन', पुस्तक- 'भारतीय साहित्य के निर्माता', पृष्ठ 8) का मत है कि- ''जितना ही अधिक राहुल के बारे में जानिए, उतना ही इस स्वयं-निर्मित व्यक्तित्व की जीवट और कष्ट-सहन की शक्ति, नए-नए ज्ञान के प्रति उनकी अनिव्यप्यि भूख और विवेकवादी स्वतंत्र प्रज्ञा के प्रति मन में प्रशंसा-भाव बढ़ता जाता है।''

भगवतशरण उपाध्याय ने राहुल जी को ''एक स्तंभ की तरह'' तथा ठाकुर प्रसाद सिंह ने उन्हें ''वटवृक्ष की तरह'' माना।

राहुल जी की आकर्षक देहयष्टि की भाँति ही उनके मस्तिष्क तथा हृदय के गुण भी अत्यन्त आकर्षक थे।

साहित्यकार अमृतराय के अनुसार, ''वे (राहुल सांकृत्यायन) छह फीट लम्बे, चौड़ा माथा, उन्नत वक्ष, भरे हुए कंधों वाले ऐसे प्राचीन आर्य- जैसे लगते थे, कि सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी प्राच्यविद्यविद् सिलवें लेवी को उन्हें देखकर भगवान् बुद्ध की याद आई।''

राहुल जी में प्रचण्ड प्रतिभा थी-तीव्र ज्ञान-पिपासा थी। उन्होंने अपने जीवन में 'आलस्य' को बिल्कुल स्थान नहीं दिया। वे प्रचण्ड परिश्रम के आदी थे। वह पक्के घुमक्कड़ थे और उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय घुमक्कड़ी में ही बिताया। घुमक्कड़ी ने ही उनके चिंतन को व्यापकता प्रदान की- उन्हें महापण्डित बनाया। राहुल जी को घुमक्कड़ी का जीवन इतना अधिक प्रिय था कि उन्होंने 'घुमक्कड़शास्त्र' नामक ग्रंथ की रचना ही कर दी थी।

साहित्य-रचना का जो प्रयोजन होता है, वही प्रयोजन आलोचकों ने 'यात्रा-साहित्य' का भी माना है। राहुल जी की इस संदर्भ में यह मान्यता है कि-

''घुमक्कड़ी एक रस है, जो काव्य के रस से किसी तरह भी कम नहीं है।''

('किन्नर देश में', पृष्ठ 84-85)

राहुल सांकृत्यायन का मत है कि ''सच्चा घुमक्कड़ धर्म, जाति, देश-काल-सारी सीमाओं से मुक्त होता है। वह सच्चे अर्थों में मानवता के प्रेम का उपासक होता है।'' वस्तुतः राहुल जी सहज मानवता के उपासक रहे हैं। उन्होंने मुक्त सहज मानवीय जीवन-तत्त्वों की खोज में ही सनातन धर्म, आर्य समाज, बौद्ध धर्म, मार्क्सवाद और मानवधर्म के उपादानों को टटोला था। हमारे यशस्वी साहित्यकार प्रभाकर माचवे (शीर्षक-'राहुल सांकृत्यायन', पुस्तक- 'भारतीय साहित्य के निर्माता', पृष्ठ 8) का मत है कि- वे एक उदार मानवतावादी थे और किसी से भी समझौता न करने वाले परंपराविरोधी-रूढ़िभंजक थे।''

राहुल सांकृत्यायन अनेक भाषाओं के पण्डित थे। जैसे-हिंदी, संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, तिब्बती तथा भोजपुरी आदि। उन्होंने अनेक विषयों पर अधिकारपूर्वक लेखन-कर्म किया है। जैसे- (1) गद्य-साहित्य (2) आलोचना (3) उपन्यास (4) कहानी (5) निबन्ध (6) भाषा-विज्ञान (7) राजनीति (8) इतिहास (9) संस्कृति (10) दर्शन (11) समाज-विज्ञान (12)

यात्रा-साहित्य (13) जीवनी (14) संस्मरण (15) नाटक (16) कोश-विज्ञान (17) व्याकरण (18) पाठानुसंधान (19) शोध (20) तिब्बत विद्या (21) बौद्ध धर्म तथा (22) लोक-साहित्य आदि।

यशस्वी आलोचक डॉ० रामचन्द्र तिवारी ('हिंदी का गद्य-साहित्य', पृष्ठ 599) का मत है कि-'' उनका (राहुल जी का) विशाल साहित्य उनकी प्रखर बुद्धि, विस्तृत जीवन-अनुभव और व्यापक एवं गंभीर अध्ययन का परिणाम है। निश्चय ही वे महाप्राण और महापण्डित हैं।'' हिंदी-साहित्य के हस्ताक्षरों में उनका पाण्डित्य 'अनन्वय' का उदाहरण है। यह पाण्डित्य उन्होंने स्वाध्याय के बल पर अर्जित किया था। यह अध्ययन उन्होंने जेलों में रहकर किया था।

लोक-जीवन, लोक-भाषा तथा लोक-साहित्य के प्रति राहुल जी का अत्यधिक अनुराग रहा है।

राहुल जी बौद्ध-साहित्य तथा दर्शन के विश्वविख्यात विद्वान थे। उनके दार्शनिक ग्रंथ हैं- 'दर्शन-दिग्दर्शन', 'कुरान-सार', 'बुद्धचर्या' तथा 'धम्मपद' आदि। बुद्ध के प्रति उनके मनोजगत् में विशेष आस्था विद्यमान रही है। कारण? कारण यह है कि बुद्ध स्वतंत्र विचारक थे। राहुल जी का ('सम्मेलन पत्रिका', आश्विन 2012 वि०, पृष्ठ 37) कहना है कि - ''बुद्ध अपने समय के स्वतंत्र विचारकों में सबसे अधिक शक्तिशाली थे।''

हिंदी के 'यात्रा-साहित्य' के क्षेत्र में राहुल जी का अवदान अपरिहार्य है। रचना-क्रम से उनके 'यात्रा-साहित्य' संबंधी ग्रंथों के शीर्षक इस प्रकार हैं-(1) तिब्बत में सवा बरस (2) 'मेरी यूरोप-यात्रा' (3) 'मेरी तिब्बत-यात्रा' (4) 'मेरी लद्दाख-यात्रा' (5) 'मेरी जीवन-यात्रा' (6) 'किन्नर देश में' (7) 'राहुल यात्रावली' (8) 'घुमक्कड़ शास्त्र' (9) 'दार्जिलिंग-परिचय' (10) 'यात्रा के पन्ने' (11) 'रूस में 25 मास' (12) 'हिमालय-परिचय' (13) 'कुमाऊँ-परिचय' तथा (14) 'गढ़वाल-परिचय'।

'घुमक्कड़ शास्त्र' शीर्षक ग्रंथ राहुल जी को सर्वाधिक यशस्वी बनाता है। संपादक एवं संकलनकर्त्ता डॉ० चन्द्रदत्त शर्मा (शीर्षक-'यात्रा-साहित्य : स्वरूप एवं विकास', संकलन-'अभिनव गद्य-विधाएँ, पृष्ठ 60-मेरठ विश्वविद्यालय प्रकाशन) का मत है कि- ''राहुल जी का 'घुमक्कड़-शास्त्र' यात्रावृत्त का एक श्रेष्ठ ग्रंथ है।

घुमक्कड़ों के लिए उपयोगी सभी बातें इस शास्त्र में सूक्ष्म रूप से बतायी गयी हैं।

श्रमण, देश-दर्शन एवं यात्रा-प्रेमियों के लिए यह बहुत सुंदर पुस्तक है।'' आलोचक डॉ० शर्मा ने राहुल जी के 'यात्रावृत्तों' को ''ज्ञान के अक्षय भण्डार'' माना है।

राहुल जी ने 'आत्मकथा' में निम्नस्थ शेर को कई बार उदधृत किया है-

सैर कर दुनिया की गाफ़िल ज़िन्दगानी फिर कहाँ ?
ज़िंदगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ?''

डॉ० भगवत शरण उपाध्याय का मत है कि-

''इतनी जिज्ञासु मेघा, सजग सक्रियता, असीम साहस, आकर्षक सरलता और उद्दाम पौरुष के साथ इतनी नम्रता एकत्र मैंने अन्यत्र नहीं देखी।

संपर्क : 'अभिवादन', 128-ए, श्याम पार्क (मेन) साहिबाबाद (गाज़ियाबाद) उ०प्र०-201005 (भारत)

सम्मान-

डॉ० 'मानव को मिला विनायक विद्यापीठ सम्मान

हिसार। हिन्दी भाषा, साहित्य, शोध एवं संपादन के क्षेत्र में विशिष्ट योदान के दृष्टिगत प्रख्यात हिंदी-रचनाकार डॉ० रामनिवास 'मानव' को विनायक विद्यापीठ, भूणास्त (मेबाड़) द्वारा विद्यापीठ रुझान प्रदान किया गया है। विद्यापीठ के संस्थापक निदेशक डॉ० देवेन्द्र कुमार के संयोजन में आयोजित एक भव्य समारोह में कारोही रियासत के पूर्व महाराजा श्री शिवदान सिंह राणावत ने डॉ० मानव को शाल, सम्मान-पत्र तथा नक़द राशि भेंट कर सम्मानित किया। उल्लेखनीय है कि

सत्ताईस महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक-संपादक और देश-विदेश की शताधिक प्रमुख संस्थाओं द्वारा सम्मानित पुरस्कृत डॉ० 'मानव' के साहित्य पर चार बार पीएच०डी० और अट्ठाईस बार एम० फिल् हो चुकी है और अनेक विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रमों में उनकी विविध रचनाएँ सम्मिलित की गई हैं।

संपर्क : कान्ता भारती
706, सेक्टर-13, हिसार

(हरि०)

संस्कृत साहित्य के-क्रांतदर्शी महाकवि कालिदास

○ सिद्धेश्वर

संस्कृत साहित्य के क्रांतदर्शी महाकवि कालिदास का भारतीय साहित्य में एक अप्रतिम स्थान है। भारतीय संस्कृति से परिचित कराती उनकी रचनाएँ हमारी अमूल्य निधि हैं। अभिज्ञान शाकुंतलम्, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, रघुवंश, कुमारसंभव, विक्रमोर्यशीयम् जैसी उनकी कृतियों से न केवल भारतीय साहित्य समृद्ध हुआ है, बल्कि विश्व साहित्य जगत् को भी नाट्य जैसी अनेक शैलियों से जिसने परिचित कराया। स्वयं कालिदास का जीवन भी उनकी रचनाओं की तरह उतार-चढ़ाव और नाटकीयता से भरा तो रहा ही है, अपना खुद का जीवन भी विविधताओं से भरपूर रहा है।

यों तो कालिदास के जन्म स्थान और तिथि को लेकर विद्वत्‌जन एकमत नहीं हैं, किंतु 'कथा कालिदास के' के लेखक हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने उनके साहित्य से संदर्भ लेकर यह साबित करने का प्रयास किया है कि कालिदास का जन्म गढ़वाल के 'आसम' नामक गाँव में हुआ था। आसम मंदाकिनी नदी के किनारे गुप्त काशी से नीचे चमोली विद्यापीठ के पास है। कालिदास ने मंदाकिनी नदी की महिमा, सुषमा और वैभव का जिस अनुभूति अनुराग और श्रद्धा के साथ चित्रण किया है उससे पता चलता है कि इस घाटी से उनका घनिष्ठ संबंध था। 'मेघदूत' में अलकापुरी का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है 'वहाँ की कन्याएँ इतनी सुंदर होती हैं कि देवता भी उन्हें पाने को तरसते हैं। वे कन्याएँ मंदाकिनी के जल की फुहारों से शीतल हुई पवन में तथा तट पर खड़े कल्पवृक्षों की छाया में तपन मिटाती हुई अपनी मुट्ठियों में रत्न लेकर उनको सुनहरी रेत में छिपाने और ढूँढ़ने का खेल खेलती हैं।'

इसी प्रकार कुमारसंभव में भी कालिदास ने लिखा है-'पार्वती, मंदाकिनी के तट की रेत पर अपनी सखियों के साथ खेलती और गुड़ियों को सजाती।' इसी तरह के उदाहरण प्रस्तुत कर लेखक 'शैलेश' ने कालिदास का गढ़वाल क्षेत्र में पैदा होना प्रमाणित करने की कोशिश की है। लेखक ने कालिदास के नाम को लेकर भी स्पष्ट करने की कोशिश की है कि वे गढ़वाल क्षेत्र के ही थे। वे लिखते हैं कि 'गढ़वाली भाषा में काली का उच्चारण 'कालि' किया जाता है। कहा जाता है कि अपने गाँव से कालिमठ जाने पर देवी ने उन्हें बोलने की शक्ति प्रदान की थी। काली माँ की कृपा के परिणामस्वरूप उन्हें कालिदास कहा जाने लगा। वे कालिमठ के बाहर बैठे रहते या आसपास के पर्वतों अथवा मंदाकिनी की सहायक नदी कालिगंगा के किनारे घूमते रहते थे।'

कालिदास जब बहुत ही कम उम्र के थे, तब उनके माता-पिता का देहावसान हो गया था। गाँव के मुखिया ने उन्हें पाला-पोसा। कालिदास स्वयं तीखे नयन-नक्श वाले सुंदर युवक थे। वे मुखिया की बेटी से प्रेम करते थे, जिसके डाकू द्वारा उठाकर ले जाने के बाद कालिदास तब से उदास और व्याकुल रहने लगे। फिर इसी बीच रत्नावलि से कालिदास की मुलाक़ात हुई और बाद में फिर उसकी राजकुमारी रत्नावली से उनका विवाह हुआ, मगर वह भी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रही।

कालिदास की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'अभिज्ञान-शाकुंतलम्' में राजा दुष्यंत और शकुंतला की प्रेम कथा है जिनके पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। इसी तरह 'विक्रमोर्वशीय' उनकी पुस्तक में उर्वशी और पुरवा की कथा है और मालविकाग्निमित्र में पुष्यमित्र और मालविका की। कालिदास ने अपनी पुस्तक 'मेघदूत' में प्रेम को आधार बनाकर पूरा महाकाव्य रच डाला। इसी प्रकार 'कुमारसंभव' पुस्तक में शिव-पार्वती के प्रेम की कथा है, जिसमें देवताओं और दानवों का संघर्ष है। इनकी पुस्तक 'रघुवंश' में महाराजा रघु द्वारा स्थापित रघुवंश के राजाओं का वर्णन है।

कालिदास के जीवन के प्रसंग में एक कथा यह भी है कि काशी की राजकुमारी विद्योत्तमा को कालिदास ने मौन रहकर परास्त करने के बाद उससे विवाह किया, मगर जैसे ही राजकुमारी को कालिदास के अपढ़ गंवार होने का पता चला, तो वह उन्हें महल से निकाल देती है। इसी तरह भटकते-भटकते जब कालिदास बंगाल पहुँचे, तो दुष्चक्र में फिर उनका विवाह वहाँ की राजकुमारी पदिमनी से होने के पश्चात् उसने भी उन्हें अपने महल से निकाल दिया। फिर भटकते-भटकते वे काली माँ के मंदिर पहुँचते हैं जहाँ उन्हें यह महाबोध होता है और वे महाकाव्यों की रचना करते हैं। इस प्रकार कालिदास एक ऐसे महाकवि हुए, जिन्होंने अपनी बौद्धिक क्षमता से अपनी कल्पना में यथार्थ का दर्शन कर महाकाव्यों की रचना की।

संपर्क : अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, गोविंदायन भवन, पूर्वी बोरिंग केनाल रोड, पटना-800001

वैभारगिरि के सात झरने

○ ईश्वर प्रसाद 'मय'

राजगीर के सरस्वती नदी के पश्चिमी भाग में जो पहाड़ अवस्थित है वह वैभारगिरि के नाम से प्रख्यात है। इसकी ऊँचाई, लंबाई तथा चौड़ाई अन्य चार पहाड़ों से अधिक है। यह पहाड़ राज़गीर के पंच पर्वतों में सबसे ऊँचा तथा हरे-भरे वृक्षों तथा जड़ी-बुटियों से भरा पड़ा है। इस पर्वत की तराई से ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। पर्यटक बड़ी सुविधा से पर्वत की ऊँचाइयों पर चढ़कर स्वास्थ्य लाभ उठाते हैं। मनोरंजन का एक बड़ा साधन है वैभारगिरी।

इस पर्वत पर कपि, भालू का वास नहीं, प्रत्यूत् बड़े-बड़े हनुमान का वास स्थान है। इन घने वनो के बीच बड़े-बड़े सर्प, भैंसे, सुअर, बाघ-चीता, सियार तथा लकरबग्घा, लोमड़ी, खरगोश बहुतायत संख्या में मौजूद हैं।

इसी वैभारगिरि की तलहटी में वीरायतन मुख्य रूप से अवस्थित है। इसी की वादी में नेत्र वीरायतन कार्यालय, पुस्तकालयादि भी विराजमान हैं। इसी वैभारगिरि की तलहटी में वेणुवन (बाँसों का वन) जो भगवान बुद्ध का प्रिय लोकासन था। यहाँ ही भगवान बुद्ध का प्रिय लोकासन था। यहाँ ही भगवान बुद्ध एक सफल साधक के रूप में अपनी साधना में तल्लीन रहा करते थे। आज भी यहाँ उनका समाधि-स्थल मौजूद है। त्रिपिटक में बुद्ध भगवान ने अपने शिष्यों से कहा था कि- ''पर्वतों में वैभारगिरि और वनों में वेणुवन तथा झरनों में सप्त झरने मुझे अतिश्य प्यारे हैं, जो वैभारगिरि की अन्तः सलिला है।''

वैभारगिरि के सात झरने आज भी अपने अतीत और वर्त्तमान रूप में विश्व विख्यात हैं, जिसकी गौरव गरिमा इतिहास प्रसिद्ध है। अपनी ऐतिहासिक प्राकृतिक, नैसर्गिक सुषमा-सौरभ से आज भी ओत प्रोत है। मूल रूप में वैभारगिरि से एक ही धारा उत्सर्जित हुई है जिसे वर्तमान काल में लोक मंगल लोकहिताय सप्त धारो में प्रवाहित कर दिया गया है। जिनका नामकरण भी सप्त मुनियों के नाम पर आधारित है वे हैं-(1) गौतम मुनि धारा (2) वशिष्ठ मुनि धारा (3) भारद्वाज मुनि धारा (4) विश्वामित्र मुनि धारा (5) पराशर मुनि धारा (6) कपिल मुनि धारा और (7) जगदग्नि मुनिधारा सभी के सभी आर्य धाराएँ हैं। प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या ये सभी गर्म धाराएँ ईश्वरीय देन या प्राकृतिक या मानवीय देन हैं? तो मैं इसके उत्तर में यही कहूँगा कि ये सप्त गर्म धाराएँ मानवीय देन हैं। जब मानव जोड़ लगाता है तो पत्थर पानी बन जाता है यह दिनकर की पंक्ति चरितार्थ कर जाती है। प्रजापति ने जब अतिश्य जोर लगाया, तो पत्थर पिघलकर गर्म पानी के रूप में निरंतर अर्हनिश बह रहा है।

मकर संक्रांति के शुभावसर पर प्रजापति ने साधुओं संतों, ऋषि-मुनियों, संत-फ़कीरों की तथा मानव, देवी-देवताओं की एक आम बैठक बुलायी। इन ऋषि-मुनियों को स्नान करने में बड़ा कष्ट का अनुभव हुआ, तो प्रजा पति ने ब्रह्मा से जल को गर्म हो जाने की प्रार्थना की प्रजापति के कथनानुसार जल गर्म होकर झरने के रूप में झरने लगे। इस प्रवाहित जल में अनेक गुण हैं। भरपेट आहार लेने के बाद भी यदि इस गर्म जल का जलपान कर लें तो भोजन सुपाच्य हो गया।

गोपाल राव ओगले 'महाराष्ट्र' के संपादक थे। पक्षाघात से पीड़ित हो गए। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति) ने उन्हें राजगीर जाने की सलाह दी। वे आए। गरम पानी के झरने से स्वस्थ हो लौटे। ओगले, डॉ० हेडगवार के परम मित्र थे। उनकी बीमारी के बारे में जानते थे। उन्हीं के आग्रह पर डॉ० हेडगवार कई लोगों के साथ 1940 में नागपुर से राजगीर रवाना हुए। प्रतिदिन साढ़े चार बजे उठ टमटम पर बैठ गरम पानी के झरने में स्नान करने जाते थे। वे पीठ को सेंकते थे। बाद में शाम में भी स्नान करने लगे। इस स्नान से उन्हें पुनः नया आयाम मिला। उन्होंने यहाँ ढाई महीना रहकर स्वास्थ्य लाभ लिया। वैभारगिरि के सात झरने में नियमित से वन से स्वयं को दोबारा काम करने लायक बनाया। जाड़े के मौसम में यहाँ हज़ारों की तायदाद में पर्यटक आते हैं और स्नान कर लाभ उठाते हैं।

वैभारगिरि अमर मुनि को भी प्यारा था। वैभारगिरि के वादियों में अपनी प्रेरणा स्रोत से वीरायतन की स्थापना की जहाँ विकलांगों को कृत्रिम अंग-प्रत्यंग, अंधों को नेत्र, ग़रीबों को रहने वास्ते आवास तथा शिक्षा के विकास के लिए विद्यालय, महाविद्यालय तथा चिकित्सा के क्षेत्र में अनुपम शोध-संस्थान की स्थापना की गई जहाँ केनिया, कोरिया और कनाडा के छात्र-छात्राएँ पढ़ लिखकर यहाँ के लोगों की चिकित्सा लाभ प्रदान करते हैं। धन्य है, वैभारगिरि पर्वत और पर्वत से बहते गरम जल के झरने। आशा प्रदान करने वाला यह वैभारगिरी सचमुच में लोकहिताय और लोक-मंगल के कारण आज भी सतत् प्रवाहित हैं। वैज्ञानिकों ने इस पर बहुत शोध-विचार किए। अंत में वे पाए कि वैभारगिरि के सात झरने अपने सौरभ-सौष्टव से परोपकराय अपनी अविरल, शांत धारा में प्रवाहित है। हे वैभारगिरि तू धन्य-धन्य।

संपर्क : अशोक नगर, राजगीर (नालंदा)

विरोधाभास

○ हितेश कुमार शर्मा

आने वाला समय भारतवर्ष के लिए अच्छा हो यही सुकामना प्रत्येक भारतवासी की है। किंतु विडंबना यह है कि कोई भी चीज सीधे-सीधे नहीं हो रही। प्रत्येक नया क़दम पिछली शूलों से त्रस्त है जो हमें पहले करना चाहिए उसे भूलकर हम वह कर रहे है जो या तो बाद में होना चाहिए अथवा जिसकी आवश्यकता नहीं है।

हमने आकाश के नक्षत्रों/ग्रहों/सौरमण्डल की खोज में चंद्रयान दौड़ा दिया। अरबों, खरबों रुपये चंद्रयान को अंतरिक्ष में भेजने पर खर्च हो गए। लेकिन क्या यह आवश्यक था। यदि चंद्रयान चंद्रमा पर जाकर वहाँ के बारे में कोई जानकारी देता भी तो उससे क्या लाभ होगा। जितना ख़र्चा चंद्रयान पर हुआ है उतने ख़र्चे से देश की कई प्रमुख सड़कों का पुनर्निमार्ण हो सकता था। जिस देश की सड़क टूटी-फूटी है उसे प्राथमिकता के आधार पर पहले सड़क ठीक करानी चाहिए बाद में आकाशीय खोज की बात करनी चाहिए। सड़कें, नदियों पर रेल पुल नये-नये, रेल मार्ग, नये-नये सड़क मार्ग चंद्रयान से कहीं ज़्यादा आवश्यक हैं, आवश्यक थे, आवश्यक रहेंगे।

जनता और नेता के बीच वोट माँगते समय जितनी निकटता होती है बाद में उतनी ही दूरी बढ़ जाती है। वह नेता जो वोट माँगते समय जनता के पैर छूने को तत्पर रहता है, चिरोरी करता है वही नेता चुनाव में जीत जाने के पश्चात् जनता से बात भी करना पसंद नहीं करता। चुने जाते समय नेता का नारा होता है ग़रीबी दूर हटाएँगे। लेकिन वह कभी भी यह स्पष्ट नहीं करता कि किसकी ग़रीबी दूर हटायेंगे। चुने जाने के बाद नेता की ग़रीबी दूर होती चली जाती है और 5 साल बीतते-बीतते वह करोड़ो की सम्पत्ति का मालिक हो जाता है। जबकि चुनाव लड़ते समय उसके पास मात्र 3 बीघा ज़मीन थी घर भी पक्का नहीं था, लेकिन चुनाव जीतने के बाद उसका घर पक्का बन जाता है तथा स्वयं के नाम या बेनाम हज़ारों एकड़ का फॉर्म उसके पैरों के नीचे होता है और जनता जिसने उसे वोट दिया था वह और ग़रीब हो जाती है। कई वोटरों के मकान बिक जाते हैं, ज़मीन बिक जाती है। कैसी विरोधाभासी स्थिति है कि जिताने वाले का दुख और गरीबी बढ़ती जाती है तथा जीतने वाले का सुख और समृद्धि बढ़ती जाती है।

हमारे सैनिक आतंकवाद से मुक़ाबला करने के लिए अँग्रेज़ों के ज़माने के हथियार प्रयोग करते हैं। हमारे सत्तासीन नेता अपने सैनिकों को आधुनिक हथियार भी नहीं दिलाते और आतंकवादियों के आधुनिक हथियारों के सामने उन्हें जंग खाई राईफ़लों से लड़ने और शहीद होने के लिए छोड़ देते हैं, दूसरी ओर हम अरबों रुपया क्रिकेट जैसे नामुराद खेल पर ख़र्च करते हैं, जिससे देश का कोई भला नहीं होता। यदि यही पैसा सैनिकों के आधुनिक हथियारों पर ख़र्च किया जाता, तो देश का भला भी हो सकता था और आतंकवाद भी खत्म हो सकता था। लेकिन विडंबना देखिए सैनिकों के हथियारों से अधिक महत्त्व हम क्रिकेट के खेल को देते हैं। क्रिकेट में जीत जाने पर भी कुछ हासिल नहीं होता। जबकि आतंकी हमले में हथियार न होने के कारण हमारे सैनिक शहीद हो जाते हैं। जिस देश के पास आधुनिक हथियार नहीं है, उसे क्रिकेट खेलने का कोई हक़ नहीं है।

वृक्ष धड़ाधड़ कटते जा रहे हैं और वन उजड़ते जा रहे है। वर्षा और मौसम दुष्प्रभावित हो रहे हैं और वनों से निकलकर जानवर बाहर आ रहे हैं। धरती की उपजाऊ शक्ति कम हो रही है। वृक्षों के कटने की हानि और वनों के उजाड़ होने से नुक़्सान हम सभी जानते हैं। लेकिन फिर भी वनों को काटने के लिए वनों की लकड़ी का प्रयोग करने के लिए आरा मशीनों के लाइसेंस दिए जा रहे हैं। वन निगम द्वारा पेड़ों की नीलामी की जा रही है। जहाँ वृक्ष खड़े थे वहाँ खेती हो रही है नए-नए मकान बनाए जा रहे हैं। यानि हम चिंता करते हैं वनों के संरक्षण की और काम करते है वनों के उजाड़ने का। जो फर्नीचर किवाड़ या चौकट आसानी से प्लास्टिक की बन सकती है उन पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। कहना कुछ और करना कुछ हमारी आदत में शुमार हो गया है।

भारतीय संविधान के अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को न्याय सस्ता और सुलभ उपलब्ध होना चाहिए, किंतु न्याय कितना मंहगा है और कितना अलभ्य हो गया है यह इसी से ज़ाहिर है कि कई करोड़ मुक़दमें देश में लंबित हैं। हमारे कृत्यों को देखिए इधर मुक़दमें लंबित हैं उधर न्यायाधीशों के स्थान रिक्त हैं। और रिक्त स्थान को भरने का कोई भीष्म प्रयास भी नहीं किया जा रहा। यदि सरकार चाहे तो अधिवक्ताओं में से अथवा धड़ाधड़ परीक्षा कराकर न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकती है। परिणामस्वरूप लंबित मुक़दमों का निस्तारण हो सकता है, लेकिन कथनी और करनी के अंतर के फलस्वरूप न न्यायालय बढ़ाए जा रहे हैं और न लंबित मुक़दमों को घटाने का प्रयास किया जा रहा है।

भारतवर्ष की आज़ादी के बाद लोकतंत्र/प्रजातंत्र/गणतंत्र की स्थापना

हेतु रियासतों का राष्ट्र में विलय किया गया था। प्रजातंत्र में रियासत या विरासत का कोई स्थान नहीं होता। कहा हमारे नेताओं ने भी यही था, लेकिन हो रहा है उल्टा। राजनीति रियासत और विरासत में सिमट कर रह गयी है। संसद में एक ही व्यक्ति दस-दस बार सांसद चयनित होकर आता है। यही स्थिति विधान सभाओं की है। बीमार, विकलांग व्यक्ति बार-बार चुनाव लड़ते हैं और येन-केन-प्रकारेण जीतकर सांसद या विधायक बन जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक बार मंत्री बनने के पश्चात् इतना धन कमा लेता है कि वह वोटरों को ख़रीदकर बार-बार सांसद मंत्री विधायक बनता रहता है और उसके क्षेत्र में उसके मुकाबले पर किसी और के चुनाव लड़ने की हिम्मत नहीं होती। ऐसे व्यक्ति प्रजातंत्र में भी रियासत का मजा ले रहे हैं। स्थिति इतनी भयानक है कि एक मंत्री जी के दो भाई, पत्नी व पुत्र तथा भतीजे संसद और विधानसभा में घुस गये हैं। नेहरु जी के बाद इंदिरा जी को व बाद में राजीव गाँधी को तथा राजीव गाँधी के बाद राहुल गाँधी जी को राजनीति का आनंद प्राप्त होना अवश्यंमभावी है। प्रजातंत्र एक मज़ाक बनकर रह गया है। महिला जागरण के नाम पर अच्छे भले घर की महिलाओं को घर की चार दीवारी से बाहर लाकर उनको असुरक्षित कर दिया गया है। हम महिलाओं की सुरक्षा की बात करते हैं और अख़्बार में एक दिन में 100 बलात्कारों की ख़बर पढ़ने को मिलती है। महिला जागरण के नाम पर महिलाओं को स्वछन्द और उच्छृखंल बना दिया गया है। महिलाओं को नौकरी, राजनीति, व्यवसाय आदि के प्रलोभन देकर उन्हें अविवाहित रहने का आनंद प्रदान करना सामाजिक विकृति का और महिला जागरण का घिनौना रूप है। नोयडा का एक समाचार प्रकाशित हुआ है कि एक युवती जो एच०सी०एल०बी०पी०ओ० कम्पनी में काम करती है रात के 3 बजे अपनी शिफ्ट समाप्त होने के पश्चात् अपने ब्वाय फ्रेन्ड के साथ रिक्सा से घर जा रही थी। रास्ते में बदमाशों ने उसके ब्वायफ्रेन्ड को गोली मार दी और उसके साथ गैंगरेप किया। महिला जागरण का दुखद परिणाम यही है कि जागरण के नाम पर युवतियाँ विवाह नहीं करना चाहती अपितु ब्वायफ्रेन्ड के साथ वही संबंध रखना चाहती हैं अगर यही जागरण है तो गैंगरेप भी जागरण का ही परिणाम है। रात के 3 बजे ब्वायफ्रेन्ड के साथ घर जाना क्या तस्वीर प्रदर्शित करता है। यदि युवती विवाहित होती तो पति उसे कभी भी रात को 3 बजे रिक्शा से लेकर घर नहीं आता। बल्कि कंपनी में ही विश्राम करता। जब से महिला जागरण का नारा देकर महिलाएँ घर से बाहर निकली हैं तब से उनकी असुरक्षा और बलात्कारों की संख्या बढ़ गयी है।

यदि सुरक्षा पर ही विचार किया जाए तो जनता पूर्णरूप से असुरक्षित है और जनप्रतिनिधि पूर्णरूप से सुरक्षित है। यानि जिन्होंने हमारे वोट से जीतकर हमारी सुरक्षा की गारंटी ली थी। उन्होंने अपनी सुरक्षा बढ़ा ली और जनता की सुरक्षा भगवान भरोसे छोड़ दी। लुटेरे आते हैं और चलती रेल में, बस में, घर में, या सड़क पर कहीं भी वारदात करके भाग जाते हैं। क्योंकि जनता के आस-पास कोई सुरक्षा घेरा नहीं है। जबकि जनप्रतिनिधि अंगरक्षकों के घेरे में सुरक्षित रहते हैं। शर्मनाक स्थिति है जनता असुरक्षित मर रही है और जनप्रतिनिधियों के चारों तरफ अंगरक्षकों का घेरा मज़बूत होता जा रहा है।

बेरोज़गारी एक ऐसी बीमारी है जो आतंकवाद, उग्रवाद, माऊवाद, नक्सलवाद, लुटेरे और अन्य सामाजिक विकृतियों को उत्पन्न करती है। प्रत्येक सरकार रोज़गार देने का वायदा करती है। किंतु बेरोज़गारी को बढ़ाती है। कैसा मज़ाक़ है कि नवयुवक बेरोज़गार घूमते रहते हैं और सेवानिवृत्त व्यक्तियों को पुनर्नियुक्ति दे दी जाती है। कार्यालयों, न्यायालयों में स्थान रिक्त पड़े हुए हैं लेकिन हम नियुक्ति नहीं कर रहे। योग्यताएँ और प्रतिभाएँ उपलब्ध हैं। लेकिन निजी स्वार्थ के कारण हम उनकी सेवाओं का लाभ नहीं लेते। यदि भारतवर्ष के सारे रिक्त स्थान भर दिए जाएँ और सेवा निवृत्त व्यक्तियों की पुनर्नियुक्ति पर रोक लगा दी जाये तो बेरोज़गारी दूर हो सकती है। लेकिन बेरोज़गार व्यक्ति, नेता, मंत्री बेरोज़गारी दूर नहीं करना चाहते। कहीं-कहीं अनुग्रह के आधार पर पति-पत्नी दोनों नौकरी कर रहे हैं। और कहीं-कहीं पति-पत्नी दोनों बेरोज़गार हैं और बच्चों के साथ आत्महत्या कर रहे हैं। किस क़दर बेहूदा व्यवस्था है, जिसको हम झेल रहे हैं। यदि व्यवस्थाएँ नहीं बदली गयीं यह विरोधाभास दूर नहीं किए गए तो जो कुछ हम झेल रहे हैं, उससे कहीं अधिक ख़राब स्थिति हमें भुगतनी पड़ेगी जो असह्य होगी। जनता और जनप्रतिनिधि के बीच की खाई बढ़ती जाएगी देश और महिलाएँ असुरक्षित होती जाएँगी। प्रजातंत्र नष्ट हो जाएगा और देश में एकतंत्र हावी हो जाएगा तथा आतंकवादियों के हाथों हमारे सैनिक और अधिकारी शहीद होते रहेंगे।

संपर्क : गणपति कॉम्पलेक्स, सिविल लाइन्स, बिजनौर- 246701 (उ०प्र०)

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका ''विचार दृष्टि'' के 11वें वर्ष में प्रवेश के लिए इसके अप्रैल-जून 2009 के प्रकाशन पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ।

अरूण कुमार सिंह

सिंह कॉम्पलेक्स

खगौल रोड, मीठापुर,

पटना-800001

शिक्षा की अवधारणा बनाम आधुनिक शिक्षा

○ सविता लखोटिया

आज शिक्षा विकास और विस्तार के चरम सोपान पर है। आज की शिक्षा से ज्ञान प्राप्त कर मानव पृथ्वी की सीमा के पार ब्रह्माण्ड के ग्रह-नक्षत्रों को छूने तथा जानने लगा है। इस शिक्षा के सहारे मनुष्य जन्म-मृत्यु के रहस्यों को उद्घाटित कर क्लोन बनाने की क्षमता प्राप्त कर चुका है। आज की शिक्षा ने प्रकृति के रहस्यों को परत दर परत खोल कर मानव को चुनौती लेने की क्षमता दी है। दूसरी ओर, इसने मनुष्य-समाज के लिए सुख-सुविधाओं का अंबार खड़ा कर देने वाली तकनीकों के आविष्कार भी किए हैं। संचार साधनों की तकनीकों से विश्व को निकट से निकटतर मनुष्य की आधुनिक शिक्षा ने ही बनाया है। शिक्षा के विस्तार में विश्व-स्तर पर जन-जन को साक्षर बनाने के सफल अभियान चल रहे हैं और देशों के स्तर पर एक सीमा तक की शिक्षा को नागरिक अधिकारों में समाहित किया जाने लगा है। देशों की सरकारों का एक अच्छा-ख़ासा बजट भी शिक्षा पर खर्च हो रहा है। दूसरी ओर, विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों की संख्या में भी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है।

शिक्षा की यह तस्वीर तो उजली है परंतु क्या तब भी इसे सार्थक एवं संपूर्ण शिक्षा कहा जा सकता है? नहीं, कदापि नहीं। आज की शिक्ष में बौद्धिक विकास तो खूब हो रहा है किंतु नैतिक और चरित्र-निर्माण की भूमिका में पिछड़ कर। सच पूछो तो सारी विद्या अपने मूल उद्देश्य से ही भटक गई हैं। शिक्षा का मूल उद्देश्य है व्यक्ति का चहूँमुखी विकास और उसमें मानवीय श्रेष्ठता की प्रतिष्ठा। शिक्षा ही किसी व्यक्ति को इंसान बनाती है, मानव का दर्जा देती है। गाँधी जी ने कहा था- शिक्षा का अर्थ है चरित्र-निर्माण और धर्म यानी कर्त्तव्य का ज्ञान। शिक्षा तो संपूर्णता में जीने की कला में पारंगत बनने का साधन है। एक प्राचीन सूक्ति में कहा भी गया है- सा विद्या या विमुक्तए। यदि शिक्षा मुक्ति या स्वतंत्रता और प्रकारान्तर से सक्षमता के लिए है तो कोई भी व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतंत्र तभी होगा जब वह सार्थक रूप से जीने की क्षमता रखेगा।

आज की शिक्षा जीने के योग्य तो बना रही है पर केवल जीविकोपार्जन कर आर्थिक स्तर पर जीने के योग्य ही। वर्तमान में बौद्धिक या अर्थोपार्जन क्षमता का ही बोलबाला है। जो व्यक्ति जितनी ऊँची तकनीक या सनद या पद हासिल कर पाए अथवा अधिक से अधिक उपार्जन कर पाए, वह उतना ही उच्च-शिक्षित कहलाता है। तब यह नहीं देखा जाता कि वह व्यक्ति कितना सामाजिक है, कितना संवेदनशील है, कितना चरित्रवान है यानी कितना इंसान है! यदि शिक्षित होकर भी व्यक्ति को इंसान की तरह जीना नहीं आया तो वह कैसा शिक्षित? यदि शिक्षित व्यक्ति में चरित्रगत विकास नहीं हो पाया तो वह धन का भी दुरुपयोग कर सकता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते हर व्यक्ति को जहाँ समाज के हित में काम करना चाहिए, वहाँ नैतिकता-विहीन व्यक्ति समाज के लिए खौफ और खतरा भी बन सकता है।

वस्तुतः वर्तमान शिक्षा एकांगी ही लगती है और इसीलिए अपूर्ण है। इस अपूर्णता में शिक्षा की आत्मा ही खो गई है। शिक्षा के प्रसार और विकास के साथ भौतिक उन्नति तो पूरे विश्व में दिखाई दे रही है परन्तु नैतिक, मानसिक, चारित्रिक एवं संवेदनात्मक सामाजिकता के उत्कर्ष के बिना सुख और शांति की उपलब्धि दिवा-स्वप्न ही बन कर रह जा रहे है। ज़रूरी है शिक्षा में बौद्धिक और नैतिक विकास का संतुलन।

आजकल नैतिक शिक्षा के लिए विद्यालयों में ''नैतिक शिक्षा'' या ''मॉरल एड्युकेशन'' नाम का पाठ्यक्रम जोड़ दिया गया है। परंतु यह ऐसा विषय नहीं कि पाठ रटवा देने से बच्चा नैतिक हो जाए। ऐसी शिक्षा के संप्रदान के लिए तो शिक्षा देने वाले को अपने जीवन में उन मानदण्डों को जी कर भी दिखाना पड़ेगा। असली बात तो यह है कि जीवन-निर्माण की यह शिक्षा केवल विद्यालय से ही पूर्ण नहीं हो जाती। बालक परिवार से लेकर पड़ोस, समाज सभी से सीखता है। हाँ, विद्यालय की भूमिका अहम होती है। अतः पूरे समाज के दृष्टिकोण में बदलाव लाए बिना इस शिक्षा का पूरा मूल्य ही नहीं रह जाता।

किंतु दुष्चक्र यह है कि परोपकारी और ईमानदार या आदर्श व्यक्ति को तो जीविका के लाले पड़े रहते हैं और अर्थ के ढेर पर खड़े व्यक्ति को सुख और सुविधाएँ मिल जाती हैं। यह असंतुलन तभी दूर होगा जब यह मान लिया जाएगा कि शक्षा जीविका उपार्जन में सक्षम और ऊँचे स्तर पर पहुँचने की चाभी भर नहीं, अपितु संपूर्णता में जीने की कला सीखने का माध्यम है।

सुख की बात यह है कि अब समाज-सरकार, धर्म-संस्थान और विश्व-कल्याण के लिए काम करने वाली अनेक संस्थाओं को इस बात की

शेषांश पृष्ठ नं. 43 पर

अपने मकसद से पिछड़ती शिक्षा

○ प्रो० प्रेम मोहन लखोटिया

सारे साक्ष्यों के आधार पर हमें निःसंदेह मान ही लेना चाहिए कि शिक्षा, उसके आयाम, उसकी प्रणाली और उसके विधि-विधान में वैश्विक स्तर पर अभूतपूर्व प्रगति हुई है। शिक्षा अब एक वैज्ञानिक विशिष्ठता और व्यापकतम स्वीकृति के साथ सर्वमान्य विषय बन गया है और संसार के सारे देश, चाहे वे अति-विकसित या यथेष्ठ विकसित हों, चाहे विकासमान हों, चाहे अर्द्ध-विकसित या अल्प-विकसित हों, इस बात की सच्चाई के प्रति सचेतन हो गए हैं कि उनके कितने नागरिक सदस्य साक्षर हो गए हैं तथा जीवन-निर्वाह के लिए मूल विषयों में कुछ दक्षता या परिचय हासिल कर चुके हैं।

समाजविज्ञानियों का प्रखर आंदोलन कि ''शिक्षा बिन सब सून, सारे संस्कारों का खून'' अब रंग लाने लगा है। दैनिक जीवन में व्याप्त कुरीतियों से लेकर आतंक का शोध केवल शिक्षा से ही हो सकता है; धर्मोन्माद का विखण्डन भी केवल उदार शिक्षा से ही हो सकता है- इस बात पर अब वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं रही। तकनीकी शिक्षा के साथ किसी भाँति की नैतिक शिक्षा भी अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य है। ऐसा भी नहीं है कि पारंपरिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा दार्शनिक शिक्षा और मानवी सभ्यता पर गहन और गूढ़ शोध और नवीनीकरण नहीं होते। हाँ, शिक्षा के क्षेत्र अब अपरिमित रूप से इतने फैल गए हैं कि शिक्षार्थी एक विषय की खोज में विशेषत्व प्राप्त करने की दिशा में सीमित होने लगा है। इसका एक कारण भी और साथ ही नतीज़ा भी यह है में बटोरने का प्रयास नहीं। संसाधन इतने अधिक विकसित हो गए हैं कि कोई भी उन्हें एक झोली में बटोरने का प्रयास नहीं करता। सामान्य-ज्ञान सूचनाओं की बैंक में पड़ी मियादी रकम सा हो गया है। अभी ब्याज से ही काम चलाया जा सकता है।

सत्य है कि 21वीं सदी के प्रारंभिक काल में ही शिक्षा की क्रान्तिकारी महत्ता विश्व के किसी भी कोने में कम नहीं रह गई है। अब हर कहीं शिक्षार्जन को नागरिक के मूलभूत अधिकारों में सम्मिलित किया जाने लगा है। सच तो यह भी है कि सामरिक सुरक्षा, संरचनात्मक निर्माण, स्वास्थ्य-आहारपोषण की व्यवस्था के बाद किसी भी देश में उसकी आय का एक हिस्सा चौथी पायदान पर शिक्षा के विकास और विस्तार पर किया जा रहा है। शिक्षा की समुन्नत प्रौद्योगिकी भी हर भूभाग की आवश्यकता के अनुसार स्थापित होने लगी है। आंकड़ों के एक विशेषज्ञ ने एक बार अनुमान लगाया था कि विश्व के सारे देशों में प्रशासन की ओर से जितना कुल व्यय शिक्षा के विकास और विस्तार पर किया जा रहा है, वह संसार के सबसे धनाढ्य देश अमेरिकी संयुक्त राष्ट्र की कुल आय का एक गुणक ही होगा।

यह कम या ज्यादा अभी चर्चा का विषय यह नहीं है पर बात जितनी सार्थक लगती है, सार्थकता में उतनी है नहीं। मात्रा से गुणवत्ता और व्यय से लाभान्विता का कदाचित् सही संकेत नहीं मिलता। साक्षर होना ही शिक्षा नहीं और शिक्षित होना भी अपने आप में विद्यावान होना नहीं है। बात चाहे वैदिक मंतव्य की हो या लैटिन भाषा की व्युत्पत्ति की हो, जिसे हम शिक्षा और अंततोगत्वा विद्या कहते हैं, वह शुद्ध आत्म-प्रबोधिनी होनी चाहिए। शिक्षा का मूल उद्देश्य ही है कि सर्वप्रथम मनुष्य अपनी अन्तर्शक्ति को पहचाने, अपनी प्रतिभाओं के पल्लवन के लिए पुरुषार्थ करे और उसके बाद यह सुनिश्चित समझ ले कि समाज, देश या विश्व, किसी कभी भी कुटुम्बकीय परिवेश के उत्थान में उसका अपना योगदान अविभाज्य भी है और अपरिताज्य भी। अगर वह इस मानक के प्रति सचेत और सक्रिय नहीं है तो विश्व कहीं न कहीं कमज़ोर रह जाएगा और उसकी कीमत उसे स्वयं भी चुकानी पड़ेगी। इसलिए औपचारिक शिक्षा के बाद हमारी संस्कृतिक में दीक्षा का प्रावधान था, जिसे आज के नए कलेवर में ''कैरियर काउंसलिंग'' की संज्ञा भी दी जाने लगी है- एक दिशा या वृत्ति में पूर्ण प्रशिक्षित एवं पारंगत होकर वह कर्तव्य भावना के साथ व्यष्टि के हित के लिए कोई शारीरिक या मानसिक किवा समिश्रित श्रम करे जिसका लाभार्जन स्वयं को भी हो और उपकार दान पूरे परिवेश को मिले। शिक्षा सार्थक जीवन-शैली की निष्ठा का उद्‌गम है, पुरुषार्थ की निरन्तर प्रेरणा है।

बात किंचित विषयांतर की लग सकती है, परंतु समीचीन है। विद्या के लिए दो आर्ष-वाक्य बार बार प्रतिपादित किए जाते रहे हैं-''सा विद्या या विमुक्तये'' और ''विद्या दादाति विनयम्''। लगता है सारी तामझाम के बावजूद हम यहीं हार गए, हमारी तकनीक-विशारद अथवा विज्ञान और तकनीक सम्मत आधुनिक शिक्षा-विधा अपने मूल उद्देश्य में असफल रह गई। यूँ कहें कि अगर ये दो बातें भी प्रकारांतर रूप से शिक्षा यानी तालीम के दो ख़ास मक़सद मान लिए जाएँ तो आगे बढ़ती शिक्षा पिछड़ रही है- सभ्य होता हुआ आदमी संस्कृति और संवेदनाविहीन होता जा रहा है। महात्मा गाँधी ने तो इस बात का पूर्वाभास पहले ही दे दिया था।

नव-शिक्षाचरण में आई सूक्ष्मतम

एक बिंदु विशेषज्ञता मनुष्य को ज्ञान-उदधि के सारे छोर तज कर एक टापू के कारे पर ला खड़ा करती है। सामान्य ज्ञान सिर्फ विशेषज्ञ सनदों वाली शिक्षा के प्रवेश की प्रतिस्पर्द्धा तक ही उपयोगी लगता है। ऐसी शिक्षा के आधार पर वृत्ति या व्यवसाय के क्षेत्र में एक बार पहुँच जाने के बाद व्यक्ति या उसका क्रेता समूह ही उसका विश्व परिसर बन जाता है। वहीं वह और छोटे मोटे टापू बंगले रच लेता है। भले ही वह माने या न माने, यह एक नए प्रकार का टापू-मंडूक बन जाता है। कभी-कभी तो परिवारों का खंडन भी ऐसी विशेषज्ञताओं के कारण होने लगता है। मंडूक की मुक्ति फिर तो मौके की छलांग ही हो सकती है या फिर छोटी-मोटी ख्यातियाँ उसे कभी-कभी उसका देशाटन करवा देती है। जीवन के भौतिक आनंद ही उसकी सिद्धि बन जाते हैं।

दूसरी तरफ़, प्रतिस्पर्द्धाओं के समर से जूझकर निकले हुए लोग किसी भी स्तर पर पहुँचते ही प्रतिष्ठा और योग्यता के अहम् से और आत्मावलंबन के भ्रम से आक्रांत हो उठते हैं। फिर विनय की बात तो दूर, शिक्षा योगक्षेमकारी हो ही नहीं सकती। विद्वानों के अहंकार कितने घातक होते हैं, यह हर किसी द्वारा जाने गए रहस्य की ही बात है।

शिक्षार्जन के बहुत सारे और भी मक़सद हैं, परंतु सामाजिकता और संवेदना बिना कोई भी यथार्थ के धरातल पर सार्थक नहीं माना जा सकता। आज हमें नए सिरे से शिक्षा के इस आत्म-प्रबोधिनी तत्त्व को समझते हुए ही आधुनिक शिक्षा की सफलता और उपादेयता का मूल्यांकन करना चाहिए। शिक्षा मानव को जीवन की पूर्णता प्रदान करने वाली विद्या है जिसमें उसके भौतिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक? मानवीय एवं चारित्रिक सभी पक्ष परम संतुलित होकर उसे उत्कर्ष प्रदान करने वाले हों। विडंबना है कि आधुनिक शिक्षा इतनी महंगी और उच्चस्तरीय होने के बावजूद इस समुच्चय मानक पर खंडित ही कही जाएगी और यदि संशोधन समय रहते न किया गया तो दूरगामी परिणाम दुःखदायक भी हो सकते है।

संपर्क : विद्याविहार, ख-61-अ, भवानी नगर, जयपुर- 302023

पृष्ठ नं. 41 का शेषांश

अनुभूति होने लगी है। यूनेस्को से लेकर स्थानीय प्रशासन तथा सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं द्वारा सुधार की अनुशंसाएँ भी की जाने लगी हैं। यूनेस्को विश्व-स्तर पर मानवीय तत्त्वों के विकास वाला पाठयक्रम संयोजित करने के प्रस्ताव विवेचित कर रहा है। विभिन्न सामाजिक संस्थाओं द्वारा संस्कार-शिविरों का आयोजन शिक्षा के इस एकांगी स्वरूप को सुधारने का ही प्रयास है। अणुव्रत अनुशास्ता महाप्रज्ञ विद्यालयों में जीव-विज्ञान की शिक्षा के माध्यम से चरित्र-निर्माण में प्रायोगिक भूमिका निभाने का सार्थक प्रयास कर रहे हैं तो बाबा रामदेव व अन्य वैदिक वाणी के प्रवर्तकों की विद्यालयों में योग-शिक्षा प्रारंभ करने की अनुशंसा नैतिक और सच्चरित्र बनने की प्रवृत्ति को उभारने के क़दम ही हैं ताकि शिक्षा को एकांगी होने से बचाया जा सके और विद्या को अपने मूल अभिमत की ओर अग्रसर किया जा सके।

इन सब आयामों पर मंथन कर समुचित कदम उठाने में जितनी तीव्रता और व्यापकता आएगी, शिक्षा के माध्यम से मानव और विश्व का भविष्य उतनी ही क्रांतिकारी गति से सुखद और आनंददायक बन सकेगा। तभी यह उक्ति सार्थक हो पाएगी कि विद्या ददाति विनयम्। विनयात् याति पात्रताम्। पात्रात् धनाप्नोति। धनात् धर्मः ततः सुखम्।

संपर्क : विद्या बिहार, ख-61-अ, भवानी नगर, जयपुर- 302023

अस्तित्व की तलाश में जूझती नारी

पिछले 4 मार्च को राष्ट्रोय विचार मंच की राजस्थान इकाई की ओर से जयपुर में सम सामयिक विषय 'अस्तित्व की तलाश में जूझती नारी' पर आयोजित संगोष्ठी में श्रीमती मनोरमा ने कहा कि आज की नारी अतीत को स्थान देती ही है साथ वर्तमान में जीकर उसे सुधारात्मक भूमिका के साथ, सार्थक भविष्य बनाने का भी प्रयास करती है। यही नहीं अपने समक्ष आई चुनौतियों का हिस्सा बनकर पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर अग्रसर होती है।

डा. मंजुला गुप्ता ने इस अवसर पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए भारतीय नारी को शक्ति रूप, परिवार की धुरी, अर्धांगिनी, सहभागिनी बताया। मंच की राजस्थान इकाई की अध्यक्षता राज चतुर्वेदी ने कहा कि आज की नारी समय की रफ्तार की दौड़ में विसंगतियों, विषमताओं और अनेक प्रकार के अत्याचारों से गुजरती हुई अपनी आवाज उठाती दिखाई दे रही है। वह अपने आचरण से भारतीय संस्कृति के नए इतिहास रचेगी, इसमें तनिक संदेह नहीं।

डॉ. कृष्णा रावत ने नारी को आदि शक्ति बताते हुए कहा कि यह दुखद स्थिति है कि पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति के अँधानुकरण ने आज नारी को नरक में ठकेलने का प्रयोग किया है जिसमें उसके अंग प्रदर्शन से मर्यादाएँ तिरोहित हो रही हैं। अंत में मंच की उपाध्यक्ष डा. सुषमा शर्मा ने कहा कि विषमताओं से गुजरते हुए आज की नारी स्व संस्कृति के स्वाभिमान के साथ अर्धांगिनी की भूमिका अदा करते हुए उसने परिवार समाज के प्रति समर्पण का भाव रखकर एक रचनात्मक ठोस एवं स्वस्थ दिशा दी है।

भारतीय नारी दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़कर अब लकीर का फकीर नहीं रह गई। पुरुष अपनी मान सिकता बदलने को तैयार नहीं है। फिर भी आज के गला काट युग में नारी अपनी सूझबूझ से अपने अस्तित्व की तलाश कर रही है।

– डा. सुषमा शर्मा, जयपुर से

गधा घिस-घिसकर गर्द हो गया

○ मूल लेखकः शिवशंकरी, अनुवादः डॉ० कमला विश्वनाथन

पति के इलाज के लिए एक बेबस औरत ने पैसों की याचना करते हुए अखबार में एक विज्ञापन दिया जो इस प्रकार छपा था-

''मेरे तैंतीस वर्षीय पति श्री सेतुमाधव जी एक प्राइवेट कंपनी में क्लर्क हैं। उनके दोनों गुर्दे खराब हो चुके हैं। इस कारण उन्हें ट्रांसप्लांटेशन की सख्त जरूरत है। इस शल्य चिकित्सा और बाद की देखभाल व दवाओं आदि में करीब एक लाख रुपए खर्च होने की संभावना हैं परिवार में मेरे अलावा उनके अधेड़ उम्र के माता-पिता तथा हमारे तीन बच्चे हैं। उनकी गिरती हालत के कारण ही मुझे शीघ्र अति शीघ्र इलाज करवाना पड़ रहा हैं आर्थिक तंगी की वजह से ही मैं यह राशि देने में असमर्थ हूँ। दयालु और कृपालु व्यक्तियों से अनुरोध है कि बड़ी राशि देकर हमारी मदद करें। राशि भेजने का पता...''

आगे पढ़े बगैर ही पूरणी ने अखबार तो तय कर तिपाही पर रख दिया। फिर सोचने लगी... बेचारी की स्थिति कितनी दयनीय है। हालत कितनी नाजुक होगी कि दूसरों के आगे हाथ फैलाने की नौबत आ गई है। इस छोटी उम्र में तीन बच्चों का बोझ तिस पर माँ-बाप... क्लर्क की सामान्य नौकरी... क्या बचा पाता होगा बेचारा। पन्द्रह तारीख के आते-आते तो साम्बर पतला होता जाता होगा और दही पानीदार लस्सी। ऐसी हालत में वह क्या कर सकता है। विज्ञापन तो आर्थिक दशा का परिचय दे ही रहा है... कैसी बदकिस्मती है। ऐसे ही लोगों को इतनी महंगी बीमारियाँ लगती हैं इन्हें तो सिर्फ सर्दी, खाँसी, हजुकाम और सिरदर्द जैसी बीमारियाँ ही लगनी चाहिए। हृदय-गुर्दे की बीमारियाँ अमीरों को चाहे लग जाएँ लेकिन... उसके विचार ने करवट बदली...

प्रकृति अगर इस तरह का पक्षपात करने पर उतर आए तो निश्चय ही अभिजात वर्ग नीरोग रहने के लिए सारी सम्पत्ति लगा देने से चूकेगा नहीं... परंतु हाय रे किस्मत! अपनी हैसियत से अधिक खर्च कर तनावग्रस्त जीवन जीने की त्रासदी तो इसी मध्यवर्ग को भुगतनी पड़ती है। पूरणी ने एक दीर्घ श्वास ली और सोचने लगी... कहते हैं ईश्वर जानता है किसे क्या देना है...क्या यह सच है...? फिर गरीब वर्ग क्यों कष्टमय जीवन जी रहा है...? सोचते हुए उसने दोबारा अखबार के विज्ञापन पर नजर दौड़ाई। विचार फिर चलने लगे... शल्य चिकित्सा के बाद उपचार हेतु मदद माँगी थी। इतनी विकट बीमारी के बाद वैसे भी ऑफिस जाना कैसे मुमकिन है? अगर घर का एकमात्र कमाऊ व्यक्ति बेकार हो जाए तो घर का किराया, दूध, राशन, स्कूल की फीस आदि का क्या होगा...? इस स्थिति की कल्पना से पूरणी का दुख अत्यधिक बढ़ता गया। विज्ञापन पढ़ते वक्त से भी कई गुना ज्यादा दुख अब हुआ। साथ ही मन में विचार कौंधा हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से क्या होगा? कुछ न कुछ तो करना ही होगा। अपनी हैसियत के मुताबिक पैसे भेजे जाएँ तो कैसा रहेगा? इस विचार के आते ही उसे ऐसा लगा जैसे अंधेरे में डगमगाते व्यक्ति को रोशनी की किरण दिखाई दे गई हो। उसने आनन्द मिश्रित भावों से भर नजरें ऊपर उठाईं। फिर मन ही मन निर्णय ले लिया कि वह अवश्य उस दुखियारी को पैसे भेजेगी। इतना ही नहीं, अपने परिचितों से भी यथा संभव मदद लेगी। बूँद-बूँद से ही तो घड़ा भरता है। हर व्यक्ति का थोड़ा-थोड़ा दान भी उस परिवार के लिए बहुत उपयोगी होगा।

पैसे भेजने का दृढ़ संकल्प कर लेने पर मन-ही-मन प्रफुल्लित हो उठी। उसके मन में आया कि सेतुरामन अवश्य बच जाएँगे। निश्चिंत हो जब वह उठी तो बाहर स्कूटर रुकने की आवाज सुनाई पड़ी। स्कूटर के अगले भाग में टंगे झोले से गोल टिफिन बॉक्स निकालकर पूरणी को देते हुए उसके पति ने कहा, 'कुछ खाने के लिए है तो दे दो, नहीं तो केवल कॉफी ही पिला दो...सिर दर्द से फटा जा रहा है। जब तक वह हाथ-मुँह धोकर आया तब तक पूरणी ने तले हुए चार वड़े प्लेट में रखकर उसकी ओर बढ़ा दिए।

'आज टी.वी. ऑन नहीं किया? नमस्कार से लेकर खुदाहाफिज़ तक देखे बिना तो कभी तुम्हें चैन नहीं आता।' खाते हुए सेतुरामन ने पूछा।

पति की व्यंग्य भरी बातों का जवाब दिए बगैर पूरणी ने चुपचाप उसकी ओर कॉफी बढ़ाई।

'क्या बात है री...? मुझसे नाराज हो क्या...?'

उसके अगले प्रश्न का उत्तर दिए बगैर जब वह भीतर चली गई तो वह भी उसके पीछे-पीछे अंदर चला गया।

'तबीयत तो ठीक है न पूरणी? चेहरा क्यों उतरा हुआ है? डॉक्टर को दिखा लाएँ।' एक हाथ से उसे बाहुपाश में लेते हुए दूसरे हाथ से तापमान देखने लगा।

''हटो जी... ऐसी कोई बात नहीं... मन में क्षोभ है कुछ कहने को जी नहीं चाहता।'

'क्षोभ है...? क्यों...? माँ या बहन आई थी क्या? जब भी वे लोग आते हैं तुम मुँह फुलाकर बैठ जाती हो... यह तो तुम्हारी आदत है।'

जब पूरणी ने महसूस किया कि बातों का रुख गलत दिशा की ओर बढ़

रहा है तो उसने पति को अखबार का विज्ञापन दिखा दिया।

'ओह! तो जनाब इसलिए उदास हैं। मैंने तो इसे सुबह ही देख लिया था।' 'आपको इन पर दया नहीं आई? इसकी याचना में कितनी वेदना है? गरीबों को भगवान कभी कष्ट न दे।'

'हम क्या कर सकते हैं... यही तो किस्मत है...? रोजाना अखबारों और कई पत्रिकाओं में इस प्रकार के विज्ञापन आते ही रहते हैं। तुम तो कभी अखबार पढ़ती हो ही नहीं आज तुम्हारी नजर इस पर कैसे पड़ गई...? हैरत से पति ने पूछा।

''मानती हूँ कि आपकी तरह अखबार की बेफिजूल खबरें मैं नहीं पढ़ती। अब ताने क्यों मार रहे हो? आज जब काम से निपट कर जब अखबार पर नजर दौड़ा रही थी तो अनायास ही इस विज्ञापन पर नजर चली गई... आपने भी तो पढ़ा है... उस पर सहानुभूति दिखाने की अपेक्षा छींटे कस रहे हो... ?'

'अरे... रे... रे... मैं तो मजाक कर रहा था। तुम तो नाराज हो गई... जब मैंने पढ़ा तो मुझे भी दुख हुआ था... पर हम क्या कर सकते हैं? बोलो... मेरे दफ्तर के अकाउंटेंट देवराजू को तो तुम जानती हो... उसके बेटे के भी दोनों गुर्दे ऐसे ही खराब हो गए थे। कितना भारी संकट आया था बेचारे पर... उसकी खुशकिस्मती बस यही थी कि उसकी पत्नी की सरकारी नौकरी थी... तो उसने संभाल लिया। इस तरह का विज्ञापन देने की नौबत ही नहीं आई। अब मुझे ही ले लो... आग कहने से मुँह जल तो नहीं जाएगा...? भगवान न करे कल मुझे ही कुछ हो जाए तो...?'

पूरणी के लिए इन शब्दों को सुनना असहनीय था। वह घबराकर बोली, 'बस करो जी... क्यों अशुभ बोलते हो? केशव मुस्करा उठा... यह तो मानव शरीर है पूरणी... कुछ भी हो सकता है. .. सतर्क तो रहना ही पड़ता है। यदि हमें कुछ हो जाए तो हमारे माता-पिता हमारे लिए बहुत बड़ा सहारा हैं। ईश्वर कृपा से वे समृद्ध भी हैं। बेचारे... उनकी स्थिति कितनी दयनीय है... हम क्यों न उनकी कुछ मदद करें...?

पूरणी की नजरें झट से ऊपर उठीं पति के विचारों में समानता देख उसकी आँखों में चमक भर गई।

'हाँ... जी..., यही तो मैं भी कहने जा रही थी। हमें धन देकर उनकी मदद करनी चाहिए।'

'पाँच सौ रुपए भेज दें?'

'पाँच सौ...?' कहते हुए केशव कुछ सोचने लगा। फिर आहिस्ते से कहा... शौक से भेज सकते हैं... परंतु दीवाली पर रेशमी साड़ी की मांग मत करना... क्यों ठीक है न...?'

बात की बतंगड़ बनते देख पूरणी नाराज होते हुए बोली,

''छीः... मैं कितनी संवेदनशील होकर कह रही हूँ... और आप हैं कि खिल्ली उड़ाए जा रहे हैं... मुझे रेशमी साड़ी तो क्या सूती साड़ी भी नहीं चाहिए... उसके पैसे भी उन्हें ही भेज दीजिए... बस...।''

उसकी जांघ पर थपथपाते हुए जब केशव ने सॉरी कहा तो उसकी आवाज में माफी मांगने के साथ-साथ अपनेपन की भावना भी थी।

''तुम्हारी वेदना मैं समझता हूँ। परंतु इस विषय को लेकर तुम गंभीर होती हुई मानसिक तनाव का अनुभव न करने लग जाओ इसलिए मैं मजाक कर रहा था। इस विज्ञापन को हम जैसे कई लोगों ने पढ़ा होगा। उनमें से कई लोगों के मन में पैसे भेजने का ख्याल भी आया होगा...इसलिए पाँच सौ की जगह दो सौ पचास भेजना ही ठीक होगा। हम अपनी हैसियत के अनुसार इतना ही भेज सकते हैं। इसके अलावा एक ही व्यक्ति को पूरे पाँच सौ भेजने की बजाय दो व्यक्तियों में यह रकम बांट दी जाए तो कैसा रहेगा...? क्यों क्या कहती हो?''

'कह तो आप ठीक ही रहे हैं... अब जब भी ऐसा विज्ञापन आए तो मुझे बताना न भूलें... हम जरूर मदद करेंगे। आस-पड़ोस, रिश्तेदारों से भी कहेंगे। सब थोड़ा-थोड़ा भी दे दें तो बड़ी रकम भेजी जा सकती है।'

'यह तो असंभव है पूरणी... तुम जब दूसरों से मांगोगी तो लोग तुम पर एहसान जताने के लिए हजारों बहाने बनाएँगे।' केशव ने समझाया।

दो सौ रुपए भेजने का निश्चय कर लेने के बाद पूरणी ने अखबार से वह विज्ञापन का अंश काटकर पति को दे दिया। जरूरतमंद की मदद करने का अपार संतोष मन में भरा था।

तनिक उत्साह से केशव ने टी.वी. पर खबरें सुनते हुए भोजन समाप्त कर लिया। फिर नुक्कड़ की दुकान ने सिगरेट का कश भरते हुए पान खरीद लिया।

पूरणी रसोईघर की सफाई करने के उपरांत पान चबाती हुई बाहर बरामदे में पड़ी बेंत की कुर्सी पर बैठ सुस्ताने लगी। एकाएक उसे कुछ याद हो आया। उसने पति से पूछा-आपने ऐसा क्यों कहा कि मुझे कुछ हो जाए तो... मैं तो बहुत घबरा गई थी। ऐसा मजाक फिर कभी न करना।

उस बात को अभी तक भूल नहीं पाई हो? इस प्रकार की भयंकर बीमारी लग जाए तो हम कर क्या सकते हैं? कम-से-कम बुरे उक्त के लिए रकम ही जमा कर लें। जब भी तुम्हें फिजूल खर्चे से रोकता हूँ तुम चिढ़ जाती हो... इसी वक्त के लिए तो रोकता हूँ। आई बात समझ में...?

दो पल पलकों को मूंदकर चिंता में डूबी रही फिर सिर हिलाकर सहमति दी और बुदबुदाई... 'ठीक कह रहे हो जी, जमा पूंजी ही तो आड़े वक्त काम आती हैं अज्ञात रोगी के दुख से जल्दबाजी में भावुक होकर मैंने पैसे भेजने का निर्णय ले लिया था। ठंडे दिमाग से सोचने पर बुजुर्गों की बात ठीक ही लगती है. . .

''तेतो पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर'' ...अपनी जरूरतों की पूर्ति के बाद ही दान धर्म की सोचनी चाहिए।

विज्ञापन देखते ही भावुकतावश जो दो सौ पचास रुपए भेजने का निश्चय किया था, वह भी हमारी हैसियत से अधिक ही लगता है। दान देना तथा लोगों की मदद करना सत्कर्म तो है परंतु अपना ख्याल भी तो करना ही पड़ता है? इस समय भेज दें तो क्या हर वक्त भेज पाएँगे?

मैं भी तो यही सोच रहा था... पर मुझे लगा कि तुम इतनी भावुकता से कह रही हो तो टोकना... उसकी बात बीच में ही काटते हुए पूरणी बोली, 'हम क्या कोई करोड़पति हैं...? मैंने भेजने की इच्छा जाहिर की और आपने तुरंत हामी भर दी। यही बहुत बड़ी बात है। हम केवल सौ रुपये भेजेंगे।,

रात पूरणी ने सपने में देखा कि उसके भेजे हुए रुपयों से उन्हें काफी मदद मिली है। अश्रुपूरित नेत्रों से वह नारी उससे कह रही थी... आपका दिल कितना विशाल है... आप सदा सुखी रहें... शुभकामनाएँ देती हुई वह नारी उसे सच में दिखाई दी या उसका भ्रम था, वह समझ नहीं पाई।

रात ठीक से नींद नहीं आई। करवटें बदल-बदलकर उसने सारी रात गुजारी। सबेरे उठने पर माथे के दायीं ओर हल्के दर्द का एहसास हुआ। तनिक परवाह किए बिना रसोईघर में जाकर कॉफी, नाश्ता तथा भोजन तैयार करने में जुट गई। दर्द सिर में फैलने लगा। आठ बजे जब केशव दफ्तर जाने के लिए उद्यत हुआ तो वह अपने दर्द को झटक कर बोली, 'पता ले लिया है न? याद से मनी ऑर्डर कर दीजिएगा।'

'अच्छा किया जो याद दिला दिया। परीक्षा की फीस भरने की आखिरी तारीख थी सो हाथ में रखे पैसों से भर दी। गैस सिलेंडर के लिए जो पैसे रखे हैं, उनमें से दे दो... सिलेंडर को तो आने में दो-तीन दिन लगेंगे ही, तब तक में बैंक से निकाल लूँगा।

'बैंक से निकालोगे...? इतनी जल्दी सारे पैसे खर्च हो गए। अभी तो तनख्वाह मिलने में चार दिन बाकी हैं।'

'क्यों ऐसे जिरह कर रही हो...? भूल गईं इस महीने हमने तीन पिक्चरें देखी हैं... चार बार होटल में डिनर किया है... इतना ही नहीं पड़ोसिन से नई साड़ी खरीदकर मासिक किश्त भी भर चुकी हो... तिस पर पूछती हो इतनी जल्दी कैसे खर्च हो गए...? अच्छा जल्दी निकालो।'

पूरणी अनमनी से सौ रुपए ले आई और बोली,

'लीजिए... मनीऑर्डर केवल पचास रुपए का ही करें तो अच्छा रहेगा... बाकी जेब खर्च के लिए रख लें। बैंक से सारे पैसे निकाल लेंगे तो मुसीबत के समय किसका द्वार खटखटाएँगे...? याद से भेज दीजिएगा। पिछली बार की तरह जैसे दीदी की चिट्ठी चार दिन जेब में रखकर मुझे ही पोस्ट करने के लिए दी थी, वैसे न करना। कहो तो गांठ बांध दूँ...?'

केशव ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी और स्कूटर स्टार्ट कर निकल गया। आदि में ऐसा उलझा कि मनीऑर्डर और गुर्दे की बीमारी से तड़पते हुए व्यक्ति को भूल ही गया।

शाम को धर लोटने पर पूरणी ने अपने नवब्याहता भाई की दुल्हन से केशव का परिचय करवाया तथा व्यग्य से कहा, 'आते-जाते रहने से ही रिश्ते बनते हैं। हनीमून से लौटे पंद्रह दिन हो गए हैं... घर का रास्ता आज दिखाई दिया है?' पूरणी ने नवदम्पति की खूब तिमारदारी की। रात को जब उन्हें बस पर चढ़ाकर आए तब दस बज चुके थे।

'जब वह मायके गई थी तो खाली हाथ ही लौटी थी... पर वह ऐसा नहीं कर सकती। शादी के बाद पहली बार मेरा छोटा भाई पत्नी समेत घर आए और मैं शगुन न करूँ...? इसलिए मैंने अपनी नई शिफॉन साड़ी के साथ शीशे जड़ा हुआ चालीस रुपए वाला ब्लाउज दे दिया। मैंने गलत तो नहीं किया...? मैं और खरीद लूँगी...।'

कपड़े बदलते समय कमीज की जेब से पर्स और रुपए निकालकर अलमारी में रख रहा था कि पता लिखा हुआ पुर्जा उड़ता हुआ नीचे आ गिरा।

'क्या है यह...?'

'वह... वह... मनीऑर्डर करने के लिए जो पता तुमने दिया था, वही...' पूरणी उससे आँखे चुराती हुई दूसरी ओर मुड़कर बोली,

'आपकी विस्मरणशीलता तो दुनिया भर में मशहूर है। वैसे भी अचानक मेहमानों के आ जाने से खर्चा भी बहुत हो गया। मनी ऑर्डर न करना भी एक तरह से ठीक ही हुआ...।'

अपनी ही बात उसे कचोटने लगी। मन की भावनाओं को छिपाने की चेष्टा करते हुए बोली... कई लोगों ने विज्ञापन पढ़ा होगा... पैसे भी भेजे होंगे... अब तक तो उन्हें काफी रकम मिल चुकी होगी...? हमारी करम तो ऊँट के मुँह में जीरा ही होगी... अगली बार देखेंगे।

राष्ट्रीय चेतना की
वैचारिक पत्रिका
''विचार दृष्टि'' के
11वें वर्ष में प्रवेश के
लिए इसके अप्रैल-जून
2009 के प्रकाशन पर
हमारी हार्दिक
शुभकामनाएँ।

प्रो. विनोद कुमार सिन्हा

मे. प्यारेलाल एंड संस
खगौल रोड, मीठापुर,
पटना-800001

रेणु की पृष्ठभूमि में वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य

○ सिद्धेश्वर

अमर कथा शिल्पी फणीश्वर नाथ रेणु न केवल एक सजग और सुलझे साहित्यकार थे, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर जे०पी० आदोलन के सक्रिय सिपाही एवं समाजवादी जन-आंदोलन के नायक भी थे। उन्होंने सामाजिक वेदना को अपनी कहानियों के माध्यम से कागज पर उतारने का काम किया। हम सब इस बात से अवगत हैं कि साहित्यकार समाज का नव निर्माण न कर नवनिर्माण के लिए मानसिक पृष्ठभूमि तैयार करता ह और वह समाज व राजनीति को सही दिशा प्रदान करता है। यही नहीं साहित्यकार समाज व राजनीति की वास्तविक परिस्थितियों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करता है।

रेणु के जीवन पर जब हम एक नजर डालते हैं, तो पाते हैं कि उनकी साहित्यिक दृष्टि काफी व्यापक थी और उन्होंने अपनी रचनाओं में बिहार के गाँवों के बारे में समग्र दृष्टि डाली है। रेणु के बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' का प्रमुख पात्र वाबन दास बिहार के नवनिर्माण की बात करता है। विकास का सूत्र सुझाता है। बिहार आज जिस स्थिति से गुजर रहा है इसमें रेणु के साहित्य द्वारा सही मार्ग की पहचान हो सकती है और सही मार्ग की पहचान से ही इस राज्य का नवनिर्माण हो सकता है। रेणु ने बिहारवासियों में परिवर्तन की व्याकुलता को राजनीति से आगे बढ़कर व्यवहार में लाने का प्रयत्न किया था। जे०पी० आंदोलन में जिस प्रकार उन्होंने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और बिहार को भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाने का संकल्प लिया उससे भोग-विलास और लालच से भरे आज के हमारे नेता सीख लेकर बिहार को पटरी पर ला सकते हैं। आत्मसम्मान से भरे रेणु ने 1971 में केंद्र सरकार से प्राप्त पद्मश्री सम्मान को 1974 में यह कहकर वापस कर दिया कि भ्रष्टाचार में लिप्त सरकार द्वारा प्रदत्त पद्मश्री सम्मान को वापस करने के लिए वे बाध्य हो रहे हैं। आज वैसे साहित्यकारों को रेणु से सीख लेनी चाहिए जो पुरस्कार-सम्मान पाने के लिए किसी भी स्तर तक उतर जाते हैं। इस प्रकार रेणु ने कलम के साथ क्रांति का रास्ता अपनाया। रेणु के साहित्य से राजनेताओं एवं जनता दोनों को सीखने की आवश्यकता है, क्योंकि एक दृष्टि-संपन्न एवं ईमानदार साहित्य सजक रेणु की कथाओं में बिहार लोकजीवन और मानवीय सरोकार अपनी संपूर्ण विविधताओं में बोलते-बतियाते से लगते हैं। समाज के आगे-आगे चलने वाले रेणु जी उस शासक की तरह थे, जो देश व राज्य की राजनीतिज्ञ सत्ता को समय-समय पर रास्ता दिखाने का काम किया। 'मैला आँचल' में रेणु कहते हैं कि उपन्यास में आजादी का जुलूस निकलने पर जो उनका नारा था- 'यह आजादी भठी ह। देश की जनता भूखी है' इस उपन्यास में रेणु भारत की असली आजादी के लिए संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं। मैला आँचल का पात्र डॉक्टर प्रशांत कहता है कि अशिक्षा, अज्ञान, सांप्रदायिकता, जातिवाद, रूढ़िवाद, भूख, बदहाली, विपन्नता ही सब रोगों की जड़ है और वह महसूस करता है कि हर जानवरनुमा व्यक्ति को पहले आदमी बनाना होगा।

इसी प्रकार 'परती परिकथा' में स्वातंत्र्योतर कथा साहित्य की बहुत उपलब्धि है। इसमें राष्ट्रीय समस्याओं, बदलते राजनीतिक एवं सामाजिक मूल्यों का चित्रण है। 'जुलूस' में संघर्ष और क्रांति का स्वर है जो 'पलट बाबूरोड' और दीर्घतपा में धीमा हो चुका था। आजादी के लिए संघर्ष करने और कुर्बानी देने वाले युवकों में सेवा, देशप्रेम जगाने के उद्देश्य से 'कितने चौराहे' की रचना हुई। भारतीय युवक अपने व्यक्तिगत संसार को छोड़कर देश के लिए आत्मोत्सर्ग करे। ऐसे युवकों के प्रति मानवीय संवेदना को उभारना इस रचना का मूल उद्देश्य है। कहना नहीं होगा कि रेणु की राजनीतिक चेतना पर उनके पारिवारिक परिवेश का भी सहयोग रहा है। उनके पिताश्री पुराने कांग्रेसी थे। रेणु स्वयं समाजवाद के पक्के समर्थक थे। समाज और देश के लिए वे चार बार जेल गए।

रेणु ने अपनी कहानियों में जहाँ मध्यवर्गीय किसानों व मजदूरों की समस्याओं की बातें कीं, वहीं जातिवाद, भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार की पनपती हुई बेल की ओर मात्र इशारा ही नहीं किया था, इसे समूल नष्ट करने की आवश्यकता पर भी बल दिया था। आत्म-साक्षी के द्वारा राजनीतिक दलों के आपसी कलह और जनता से अलगाव की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया था।

यह बात सही है कि रेणु ग्रामीण जीवन के लेखक थे, किंतु उनका राजनीतिक जीवन भी उतना ही महत्त्वपूर्ण रहा। महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए सत्याग्रह आंदोलन में भी उन्होंने भाग लिया। इनकी कृतियों में कॉंग्रेस, समाजवादी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी का वर्णन आया है। सारे दल के लोग अपने अधिकार और कर्त्तव्य के प्रति सजग थे, मगर मौजूदा दौर के राजनीतिक परिदृश्य में सबकुछ गौण दिखाई पड़ते हैं। आपातकालीन दुर्दशा पर आक्रोश व्यक्त करते हुए रेणु जी ने कहा था, ''इंदिरा जी क्यों नहीं अपनी गद्दी बचाकर पूरे देश को एटम बम से उड़ा देती है? उनको एकछत्र राज्य ही तो करना है। न कोई बचेगा न विरोध होगा। कम से कम मेरे जैसे लोग तो विरोध करेंगे ही। या नहीं तो ऐसा करें- मेरे जैसे लोगों को चुन-चुनकर फाँसी पर लटका दें।''

यों तो रेणु ने जिन महान कथाकारों से प्रेरणा ग्रहण की उनमें रूसी कथाकार मिखाइल शोलोखोव, बंगला कथाकार ताराशंकर बंद्योपाध्याय और सतीनाथ भादुड़ी

तथा हिंदी के कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद का नाम आता है, किंतु मुख्यरूप से अपने साहित्यिक गुरु सतीनाथ भादुड़ी से वे सर्वाधिक प्रभावित हुए, क्योंकि 1942 के आंदोलन में भाग लेने की वजह से वे दोनों भागलपुर जेल में एक साथ थे।

रेणु जीवन को उसके संपूर्ण सौंदर्य के साथ जीना चाहते थे। इसलिए उन्हें हर सुंदर वस्तु से प्यार था। यही कारण है कि रेणु और उनका साहित्य हर उस व्यक्ति, व्यवस्था और तंत्र के विरूद्ध संघर्ष करते हैं जो मनुष्य से जीने और विकास करने की संभावनाएँ छीनता है। रेणु ने अपने समग्र लेखन में व्यवस्था और व्यक्ति के अंतर्विरोधों और व्यक्तियों के समाज के जिन अंतर्विरोधों को जीवन के कैनवास पर व्यक्त किया है, राजनीति उनके केंद्र में है।

अररिया के औरा ही हिंगना के खेत और मिट्टी में आकंठ डूबे खेतिहर किसान रेणु और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और फिर भारतीय लोकतंत्र की लड़ाई में अग्रणी भूमिका निभाने वाले क्रांतिकारी रेणु, नेपाल में राणाशाही के विरूद्ध मुक्ति संग्राम की लड़ाई लड़ने वाले रेणु और सबसे ऊपर अपने साहित्य में मानवीयता की लड़ाई लड़ने वाले सतत् जाग्रत रेणु को साहित्यिक और राजनीतिक माहौल बचपन में ही मिल गया था। सन् 1971 में होनेवाले बंगलादेश के मुक्ति संग्राम ने रेणु के मन को झकझोर दिया था। रेणु जीवन में संघर्ष करते हुए मनुष्यता द्वारा प्राप्त विजय के पक्षधर रहे हैं। विद्रोह, संघर्ष, पराक्रम और मातृभूमि से प्रेम रेणु की चेतना के अंग हैं। स्वाधीनता की हर लड़ाई में रेणु अपनी कलम के साथ उपस्थित हैं और उन्होंने अपना जीवन अपनी शर्तों पर जिया।

इसलिए रेणु आज भी जिंदा हैं अपनी जिंदादिली के लिए अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए तानाशाही के विरूद्ध संघर्ष के लिए और अपनी जिजीविषा के लिए।

○

रेणु आज जिंदा हैं अपनी जिंदादिली और क्रांतिकारी विचारों के लिए

रेणु की जयंती पर विचार संगोष्ठी

अमर कथा शिल्पी फणिश्वर नाथ रेणु एक सजग साहित्यकार के साथ-साथ स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर नेपाल के मुक्ति संग्राम और जे०पी० आंदोलन के एक सक्रिय सिपाही भी थे। अपनी शर्त्तों पर जीने वाले रेणु स्वाधीनता की हर लड़ाई में अपनी कलम के उपस्थित हैं और आज भी जिंदा हैं अपनी जिंदादिली के लिए अपने क्रांतिकारी विचारों के लिए और तानाशाही के विरूद्ध संघर्ष तथा अपनी जिजीविषा के लिए। ये उद्‌गार हैं बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष सिद्धेश्वर प्रसाद के जिन्होंने विगत 4 मार्च 2009 को पटना के देशरत्न उद्यान में राष्ट्रीय विचार मंच की बिहार ईकाई द्वारा रेणु की पृष्ठभूमि और वर्त्तमान राजनीतिक परिदृश्य 'विषय पर आयोजित विचार संगोष्ठी के अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यक्त किए।

संगोष्ठी के मुख्य अतिथि प्रो० ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार पूर्व कुलपति कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि रेणु के साहित्य लेखन और व्यक्तित्व को समझने के लिए नेपाल की क्रांति, भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम, समाजवादी जन-आंदोलन के साथ-साथ जे०पी० आंदोलन के पूरे परिदृश्य को समझना जरूरी है।

संगोष्ठी के मुख्य वक्ता तथा भारतीय सेना के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी कर्नल एस०एस० राय ने कहा कि रेणु के राजनीतिक जीवन में जो मूलभूत ईमानदारी और पारदर्शिता देखने को मिली वह आज के नेताओं में रत्तीभर भी नहीं। समकालीन यथार्थ को व्यंजित करने के लिए रेणु ने लोक जीवन की विविध विधाओं का प्रयोग किया। कर्नलराय आँकड़ों को प्रस्तुत करते हुए यह बताने में सफल रहे कि रेणु के सार्वजनिक जीवन के ठीक विपरीत मौजूदा दौर के राजनेताओं व जन प्रतिनिधियों में दोहरा चरित्र देखने को मिलता है जिनके व्यक्तित्व के अंतर्विरोधों को जीवन के कैनवास पर रेणु ने अपने साहित्य में व्यक्त किया है।

प्रारंभ में मंच से जुड़े साहित्यकार मनु सिंह ने संगोष्ठी के मान्य अतिथियों व सुधी श्रोताओं के स्वागत के क्रम में रेणु के मैला आँचल परती परिकथा जुलूस, दीर्घ तथा ठुमरी, कितने चौराहे, अग्नि खोर, अच्छे आदमी आदि रचनाओं का हवाला देते हुए कहा कि उनकी संवेदना के सूत्र अपने गाँव की धरती से जुड़े थे। संगोष्ठी को भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी जियालाल आर्य ने कहा कि रेणु ने सामाजिक परिबर्त्तनों को आर्थिक परिबर्तनों और राजनीतिक चेतना से उत्पन्न ताकत के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त किया है। संगोष्ठी को अपने विचारों से जीवंत बनाया उमेश्वर सिंह कामेश्वर प्रसाद सिन्हा, राम विलास मेहता, डॉ० परमानंद मिश्र, तथा नरेन्द्र मिश्र ने। कार्यक्रम का संचालन डॉ० शाहिद जमील तथा आभार व्यक्त किया लखन सिंह ने।

राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका "विचार दृष्टि" के 11वें वर्ष में प्रवेश के लिए इसके अप्रैल-जून 2009 के प्रकाशन पर हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ।

अनिल वार्ष्णेय
मैसर्स बालाजी कम्प्यूटरर्स
दिल्ली-92, 9313410033

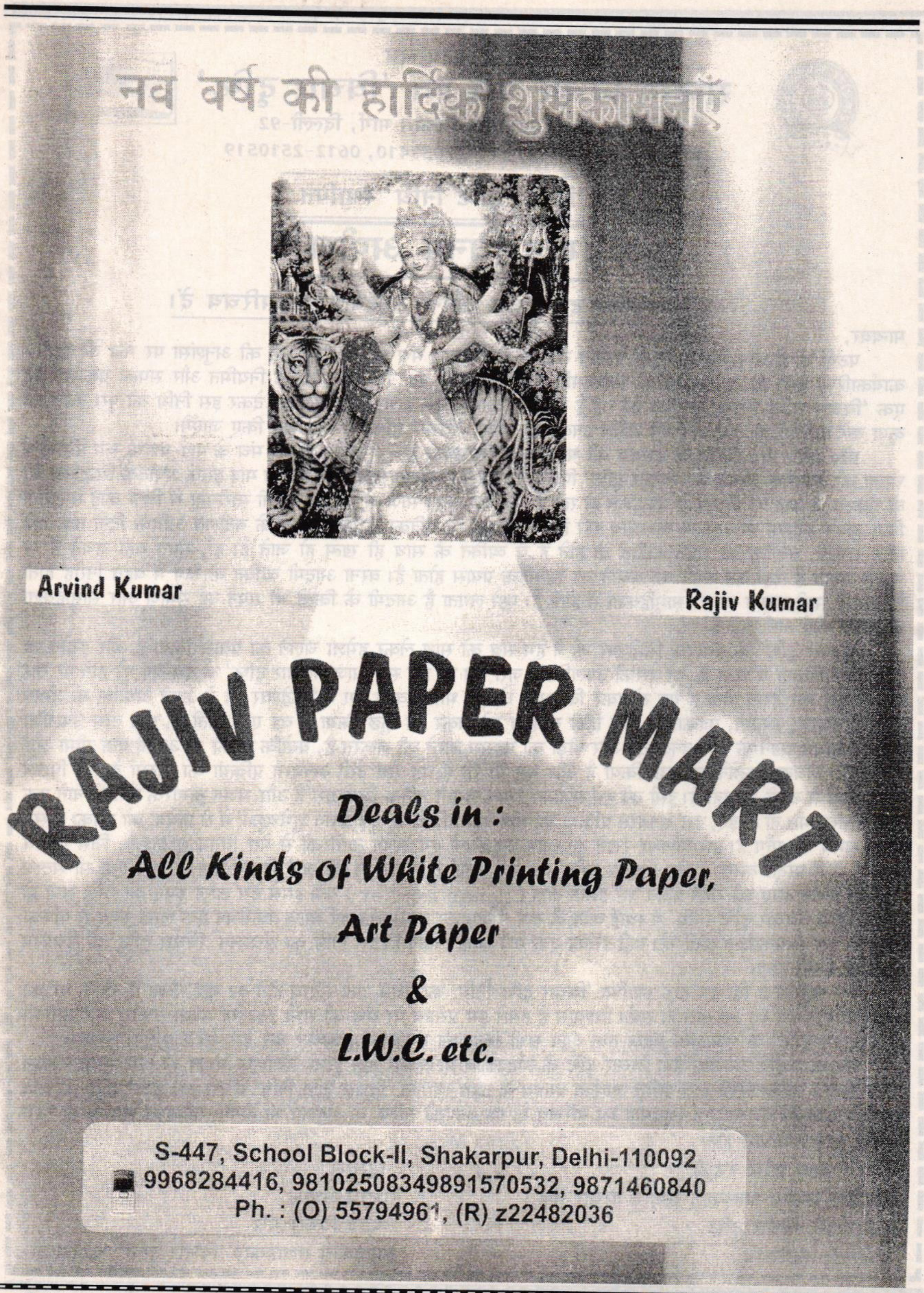
नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ
Arvind Kumar
Rajiv Kumar
RAJIV PAPER MART
Deals in :
All Kinds of White Printing Paper,
Art Paper
&
L.W.C. etc.
S-447, School Block-II, Shakarpur, Delhi-110092
9968284416, 98102508349891570532, 9871460840
Ph. : (O) 55794961, (R) z22482036

राष्ट्रीय कार्यालय

राष्ट्रीय विचार मंच एवं 'विचार दृष्टि'

दृष्टि, यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92

फोन 011-22530652, 011-22059410, 0612-2510519

'विचार दृष्टि निधि' स्थापित

एक विनम्र अपील

उदारतापूर्वक दान देकर अपनी सहृदयता का परिचय दें।

मान्यवर,

पटना के प्रो०एम.पी० सिन्हा के प्रस्ताव तथा राष्ट्रीय विचार मंच की बिहार इकाई की अनुशंसा पर मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा 22 जून 2008 को सर्वसम्मति से मंच के मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के नियमित और सफल प्रकाशन हेतु एक **'विचार दृष्टि निधि'** स्थापित की गई है जिसमें एक मुस्त दस हजार रुपए का दान देकर इस निधि को पूरा करने की कृपा करें दाताओं के नाम और पते सहित उनके रंगीन चित्र 'विचार दृष्टि' में प्रकाशित किए जाएँगे।

प्रो० एम० पी० सिन्हा के प्रस्ताव की भाषा कुछ इस प्रकार है– ''राष्ट्रीय विचार मंच के मुख-पत्र के रूप में राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका 'विचार दृष्टि' पिछले दस साल से लगातार नियमित रूप से मात्र इसके संपादक सिद्धेश्वर जी के संकल्प के बल पर दिल्ली से प्रकाशित हो रही है और यह अपने साज-सज्जा एवं अपनी स्तरीयता से बिना कोई समझौता किए अपने उद्येश्यों के अनुरूप कामयाब रही है, मगर कोई भी पत्रिका केवल संकल्प के बदौलत अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती, क्योंकि जो सपने व्यक्ति के होते हैं वे व्यक्ति के साथ ही खत्म हो जाते हैं। हाँ, सपने वही बचते हैं या फलते-फूलते हैं जहाँ उस सपने को बचाने का सामूहिक प्रयास होता है। वरना आदमी व्यक्ति के रूप में बहुत निरीह होता है। उसकी सारी ताकत उसकी सामूहिकता में होती है। मुझे लगता है आदमी के किसी भी सपने का समाज और सामूहिकता के बाहर कोई अर्थ नहीं है।

'विचार दृष्टि' के संपादक सिद्धेश्वर जी ने हम सब को साथ लेकर हमेशा चलने का प्रयास किया है और इन्होंने जो अपनी सामूहिकता में पाया है, जो उसकी उपलब्धि है जरा उस पर हम सब आज 'विचार दृष्टि' के दस बर्ष पूरे होने पर गौर करें। मैं कई बार हैरान होता हूँ यह सोचकर कि आज के इस भौतिकवादी युग में सिद्धेश्वर जी ने अपने अबतक के जीवन काल में समाज, संगठन, पत्रकारिता और हिंदी साहित्य को लेकर जो कुछ किया है वह एक थाती है, एक ठोस उपलब्धि है जिसे कायम रखने के लिए इनके दर्द और पीड़ा को महसूस करने की जरूरत है, क्योंकि इनकी भी अपनी एक सीमा और सामर्थ्य है। अबतक इन्होंने जो कुछ किया है और कर पा रहे हैं वह सब उसी अनवरत प्रक्रिया का हिस्सा है, जो पिछले अनेक वर्षों से चली आ रही है। इसी को हमें संजोकर रखना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है और सजग नागरिक होने के नाते एक परम कर्त्तव्य भी। तो आइए, इस अनवरत प्रक्रिया का मंच तथा पत्रिका से जुड़े सजग शुभेच्छुओं में से प्रत्येक को इसका हिस्सा बनना समय की माँग है। इसे मद्देनजर रखते हुए आप प्रबुद्धजनों एवं सजग नागरिकों से मेरा विनम्र सुझाव है, जिसे प्रस्ताव के रूप में मैं प्रस्तुत करता हूँ कि 'विचार दृष्टि' की एक स्थाई निधि कायम की जाए जिसमें कम-से-कम एक सौ सदस्य दस-दस हजार रुपए की राशि प्रदान कर इसके दाता (Doner member) बनें। इससे दस लाख रुपए की राशि जमा हो जाएगी जिसे 'विचार दृष्टि निधि' में स्थाई कोष के रूप मे जमाकर उससे प्रति वर्ष ब्याज तकरीबन एक लाख रुपए से पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित होती रहे। यही इसका एक मात्र स्थाई निदान है। इस निधि का संचालन 'विचार दृष्टि' के संचालन मंडल के जिम्मे होगा।

मेरा अनुरोध है कि इस तरह स्थापित 'विचार दृष्टि निधि' का प्रथम दाता सदस्य होने का मुझे मौका दें, ताकि पत्रिका चलाने में मुझे गर्व का अहसास हो सके। विश्वास है हमारे इस प्रस्ताव पर मंच की सभी इकाईयों सहित राष्ट्रीय कार्यकारिणी एवं 'विचार दृष्टि' के संचालक-मंडल तथा आप सभी विद्वतजन सकारात्मक विचार कर इसे मूर्त रूप देंगे। धन्यवाद।''

मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष तथा विचार दृष्टि के संपादकीय सलाहकार तथा इसके संचालक-मंडल की ओर से यह अपील है कि राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा पारित उपर्युक्त प्रस्ताव के तहत स्थापित 'विचार दृष्टि निधि' में दस-दस हजार रुपए का दान देकर आप अपनी उदारता एवं सहृदयता का परिचय दें। यह आपकी गरिमा के अनुरूप भी होगा। व्यक्तिगत रूप से भी आप दाताओं के हम आभारी होंगे।

डॉ० बाल शौरि रेड्डी
वरिष्ठ राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय विचार मंच
परामर्शी, विचार दृष्टि,
चेन्नई, तमिलनाडु

नंदलाल
राष्ट्रीय अध्यक्ष
राष्ट्रीय विचार मंच
संपादकीय सलाहकार 'विचार दृष्टि' नई दिल्ली

विचार दृष्टि

(राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका)

राष्ट्रीय कार्यालय : 'दृष्टि', यू-207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-110092

पत्रांकः विदृ/399 दिल्ली, दिनांक : 2 अप्रैल 2009

सेवा में,

श्री/श्रीमती/मेसर्स ....

....

....

विषयः विज्ञापन-दर-तालिकानुसार 'विचार दृष्टि' में अपने प्रतिष्ठान का एक विज्ञापन देकर इसके नियमित प्रकाशन के जरिए स्वस्थ्य समाज के निर्माण में सहयोग करने के सबंध में।

महाशय,

यह जानकर प्रसन्नता होगी कि राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था-राष्ट्रीय विचार मंच के मुख-पत्र के रूप में 'विचार दृष्टि' पिछले दस वर्षों से देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने हेतु लगातार प्रयासरत हैं विचारों पर केंद्रीत आधुनिक दृष्टि और बिना कोई चटपटी मसालेदार व अश्लील सामग्री प्रस्तुत किए संभवतः यह पहली पत्रिका है, जो हिंदी पत्रकारिता में आने वाले परिवर्तनों का कुछ आभास देती है और पाठकों को स्वस्थ्य समाज और सबल राष्ट्र के निर्माण हेतु स्वस्थ मानसिक खुराक प्रदान करती है। बड़े स्तर पर समाज या संचार माध्यम इसे तवज्जो दें या नहीं, मगर समाज के प्रबुद्ध एवं सदचित्तजन तथा रचनाकार एवं साहित्य से जुड़े सुधी लोगों के मन को इसमें लौ लग चुकी है जिसके बल पर मुझे लगता है कि बारिश की मामूली फुहार से यदि एक कोपल भी फूट जाती है, तो लोगों को अहसास होगा कि जमीं पर किसी ने मुट्ठी भर तारे बटोर लाए हैं।

बिना कोई सरकारी आर्थिक सहयोग के यह पत्रिका अपने उद्देश्यपूर्ण संघर्ष के लिए अग्रसर है यह सोचकर कि

कहीं न कहीं से किसी न किसी को, शुरुआत तो करनी होगी,
भारत की तस्वीर बदलनी होगी, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी।

तो आइए, आप भी इस लड़ाई का एक हिस्सा बन निम्नांकित विज्ञापन-दर-तालिकानुसार अपने प्रतिष्ठापन का एक विज्ञापन देकर इसके नियमित एवं स्तरीय प्रकाशन के जरिए स्वस्थ्य समाज के निर्माण में सहयोग प्रदान करें, यह आप और आपके प्रतिष्ठान की गरिमा के अनुरूप होगा और राष्ट्रीय दायित्व के निर्वहन में आपका यह सहयोग एक महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाएगा।

विज्ञापन राशि चेक/बैंक ड्रॉफ्ट 'विचार दृष्टि' के नाम से अथवा नकद अधिकृत अधिकारी को देय होगी। पत्रिका की पाँच हजार प्रतियाँ 10½" x 7½" (मुद्रित स्थान 9½" x 7") आकार की प्रकाशित होती हैं।

विज्ञापन-दर-तालिका

	आवरण पृष्ठ			भीतरी पृष्ठ	
1.	मुख्य पृष्ठ सुरक्षित	सुरक्षित	6.	रंगीन पूर्णपृष्ठ	रु. 10,000/-
2.	अंतिम रंगीन पूर्णपृष्ठ	रु. 25,000/-	7.	रंगीन आधा पृष्ठ	रु. 10,000/-
3.	अंतिम रंगीन आधा पृष्ठ	रु. 15,000/-	8.	सादा पूर्णपृष्ठ	रु. 2,500/-
4.	पृष्ठ सं. एक और दो रंगीन पूर्णपृष्ठ	रु. 15,000/-	9.	सादा आधा पृष्ठ	रु. 1,500/-
5.	पृष्ठ सं. एक और दो रंगीन आधा पृष्ठ	रु. 8,000/-	10.	सादा चौथाई पृष्ठ	रु. 500/-

नोटः उपर्युक्त दर एक अंक के विज्ञापन का है। कुल चार अंकों में विज्ञापन देने से 20 प्रतिशत की रियायत दी जाती है।

विनीत

संपादक

पूर्व मेदिनीपुर का गेहूँखाली और जलशोधन संयंत्र

○ शिव कुमार सिंह

पश्चिम बंगाल के पूर्व मेदीनीपुर जिले के अंतर्गत कपास एरिया से लगभग 20 कि.मी. दूरी पर गेहूँखाली स्थित है। यहाँ हल्दिया विकास प्राधिकारण के अंतर्गत एक पानी शुद्धिकरण प्लांट लगा है जहाँ अशुद्ध पानी को शुद्धकर उपयोग करने लायक बनाया जाता है। यहाँ हावड़ा से आने के लिए, वहाँ से मेचदा फिर कपास एरिया जो नेशनल हाइवे पर है जहाँ से लगभग 20 मि०मी० की दूरी पर स्थित है। हल्दिया से भी कपास एरिया होते हुए गेहूँखाली स्थान को पहुँचा जा सकता है।

आज दुनिया के विकास करने व सुविधाओं की उपलब्धता के बावजूद पानी की समस्या बढ़ रही है उसे देखते हुए इस तरह के प्लांट का महत्त्व बढ़ जाता है। मालुम हो कि वैज्ञानिकों के मतानुसार दुनिया में पीने लायक पानी कुल उपलब्ध पानी का लगभग 3 प्रतिशत है। स्वाभाविक तौर पर बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए, उनकी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इस तरह के पानी शुद्ध करने वाला प्लांट बढ़ाने होंगे।

यहाँ सबसे बड़ी बात है कि आखिर क्या कारण है कि गेहूँखाली स्थान को ही इस तरह के प्लांट के लिए चुना गया जबकि उस क्षेत्र में लोगों की जनसंख्या घनत्व कम है और पानी का स्थानांतरण यहाँ से लगभग 30 कि०मी० दूरी पर हल्दिया को कुल उपलब्ध पानी का 80 प्रतिशत भाग 8 मिलियन गैलन जाता है जहाँ इसका उपयोग कलकारखाने में होता है शेष पानी वाणिज्य, नगर निगम व घरेलु जरूरतों को पुरा करने के लिए होता है। हल्दिया जो समुद्र के किनारे स्थित है जहाँ पोर्ट ट्रस्ट है, बड़े-बड़े पानी वाले जहाज द्वारा सामान को देश-विदेश भेजा जाता है, चारो तरफ़ कलकारखाने भरे हैं, देश के कोने-कोने में पेट्रालियम के लिए जाना जाता है। वहाँ उपलब्ध पानी नमकीन है। दूसरी ओर गेहूँखाली क्षेत्र में अवस्थित प्लांट के नजदीक ही तीन नदियों रूपनारायण, हुगली व दामोदर नदियों का संगम है, जिसके कारण वहाँ पानी की उपलब्धता भरपूर मात्रा में बराबर बनी रहती है। यहाँ उपलब्ध पानी में अर्सेनिक की मात्रा बहुत कम है, मालुम हो पानी में अर्सेनिक की ज्यादा मात्रा में रहना मानव अंगो के लिए ठीक नहीं। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस क्षेत्र के भूतल में उपलब्ध पानी में फ्लोराइड की मात्रा बहुत ज़्यादा है जिसके कारण यह पीने के लिए अनुपयुक्त है। फ्लोराइड के पानी में अधिकता से मानव अंगों में हड्डियों पर ज्यादा कुप्रभाव डालती है और विभिन्न बीमारियों का कारण बन सकती है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर इस क्षेत्र में उपलब्ध पानी को शुद्धकर आम जनता व कल-कारखाने को कराया जाता है।

गेहूँखाली आने का एक प्रमुख बजह बड़े क्षेत्र में फैला पानी शुद्धीकरण संयंत्र है जिसे देखने का प्रयास आने वाले सभी लोग करते हैं। यह संयंत्र गार्डेन के ठीक पीछे बना है। नदी से सबसे पहले इंटेक चैनल से नदी का पानी कृत्रिम तलाब में जमा किया जाता है जो तीन तलाबों के रूप में बड़े क्षेत्रों में फैला हुआ है जहाँ प्रीसेटलींग की प्रक्रिया में होती है अर्थात अशुद्ध पानी में उपलब्ध छोटे-छोटे कण पानी में नीचे बैठ जाते हैं।

इसके बाद पानी को रासायनिक प्रक्रिया के लिए भेजा जाता है जहाँ एलम पॉली इलेक्ट्रोलाइसीस से अशुद्धियों को अलग करने में सहयोग लिया जाता है। अब मिश्रण अधिक गति से चलाया जाता है तत्पश्चात् पानी को 4 क्लोरी कलकुलेटर क्लारी फायर से होते हुए पानी को आगे चढ़ाया जाता है। यह ऊपर से खुला हुआ लोहे का वृताकार बड़ा कक्ष होता है जो तीन भाग में बँटा होता है। तीनो भागों में बारी-2 से होते हुए गुज़रता है। इस इकाई में एक केन्द्रियकृत क्लारीफायर होता है जहाँ पानी को तेज़ी से गति में लाया जाता है उसके बाद सेटलिंग क्षेत्र है जहाँ उपस्थित छोटे-छोटे अशुद्ध कण नीचे बैठते हैं। सबसे किनारे वाले क्षेत्र पानी फील्टर वेड की ओर प्रस्थान करता है। यह फील्टर वेड दो युनिट में वँटा है। एक यूनिट में चार फिल्टर बड़े तथा दूसरे यूनिट में बारह फिल्टर वेड की व्यवस्था है। हर फिल्टर वेड को चालु करने, कार्य करने में लाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक पैनल बना है जिस पर विभिन्न कार्यों के लिए अलग-अलग स्वीच बने हैं यहाँ पानी को तेज़ गति में कुछ समय तक व्याल/गति दिया जाता है बालू कणों के साथ। ऐसा करने से पानी में घुले अशुद्धियाँ ढीले होते हैं उसके बाद हवा

और पानी का तेज गति में फ्लेश एवं व्यालिंग इलेक्ट्रॉनिक पैनल में लगे स्वीचों के माध्यम से किया जाता है। यहाँ पानी के स्तर के अनुसार दो भागों में उपयोगी और अनुपयोगी पानी के रूप में अलग कर लेते है। उपयोगी पानी को एयरीनेशन प्रक्रिया में भेजा जाता है जहाँ उसे पानी रिजर्वियर में रखकर पानी के ऊँची टंकी में भेजा जाता है।

अब इस पानी को कुछ कि०मी० की दूरी पर स्थित चैतन्यपुर पम्पहाउस भेजा जाता है जहाँ से हल्दिया पेट्रो के मिकल्स लिमिटेड को दिया जाता है। फिर आगे एक पम्प हाउस वासुदेवपुर में भेजा जाता है जहाँ से मित्सुवीसी, नगर निगम, वाणिज्यिक उपयोग घरेलु ज़रूरतों के लिए दिया जाता है।

यहाँ पर बड़े क्षेत्रों में पार्क बने हैं जहाँ हमेशा लोग भ्रमण के लिए आते रहते हैं। इस पार्क में झूले व बीच में एक छोटा कृत्रिम तालाब बना है। पानी की पारदर्शी स्थिति व फूल पौधों की सजावट मनमोहक है। गार्डेन में एक रेस्ट्रेंट कील भी व्यवस्था है जहाँ जलपान किया जा सकता हैं हालाँकि गार्डेन का आनंद लेने के लिए साधारण शुल्क अदा करना पड़ता है। गार्डेन के अंदर अपने खाने पीने की, पानी व्यवस्था में कोई समस्या नहीं है। आने वाले छात्र/छात्राओं द्वारा दिन भर कार्यक्रम लेकर आराम से अपना समय बीता सकते हैं इस भ्रमण का आनंद ले सकते हैं। दूर से आने वालों के लिए शुल्क अदा करने पर रहने के लिए कमरे की व्यवस्था है जो चाँदनी रात में नदी की स्थिति व चारो ओर प्राकृति सौंदर्य के मनमोहक वातावरण का लुत्फ़ उठाना यादगार होगा।

गार्डेन के सामने ही नदी का बड़े पाट के साथ मनोहारी दृश्य दिखाई पड़ता है जो मन को भाये बिना नहीं रहता। सामने कई स्टीमर आते जाते दिखाई पड़ते हैं। यहाँ से नदियों की धारा कुछ किलोमीटर की दूरी पर समुद्र में मिलती है। समुद्र में आने वाले लहरों के कारण यहाँ नदी में पानी के स्तर का बढ़ना घटना भ्रमण में आए लोगों के मन में कौतुहल पैदा करता है दिलों में यह प्राकृतिक सौंदर्य आकर्षण प्रदान करता है। सुबह, दो पहर और शाम में नदियों के दूसरी ओर किनारे पर हरे भरे पेड़ों की सौंदर्य, सूर्य की किरणों की लालिमा लोगों के मन को लुभाता है और सुबह की ताज़ा हवा की प्राकृतिक उर्जा तन-मन को सराबोर करता है, शरीर मे ताज़गी और स्फूर्ति का अनुभव कराता है।

एक ओर जहाँ विदेशी शासकों का आगमन बंगाल की खाड़ी व गेहूँखाली होते हुए कोलकाता में आकर अपने सम्राज्य को पूरे हिंदुस्तान फैलाया वहीं खुदीराम बोस व मतंगणी हाजरा जैसे प्रभावकारी, क्रांतिकारी स्वतंत्रता सेनानी भी इसी पूर्व मेदीनीपुर में अँग्रेजो के विरुद्ध जीवन को देश के नाम सौंप दिया। देश के जाने माने साहित्यकार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इसी जिले के थे, जिनका सामाजिक स्तर पर प्रभावकारी महत्त्व रहा, क्योंकि उन्होंने इन क्षेत्रों में विधवा विवाह के विरोध में क्रांतिकारी भूमिका निभाई जिस कारण भी गेहूँखाली का महत्त्व दूसरे प्रदेश और विदेश से आने वालों के लिए बढ़ जाता है।

इन्हीं कारणों से गेहूँखाली क्षेत्र को आम लोगों ही नहीं, बल्कि स्कूल/कॉलेज के छात्र/छात्राएँ भी शैक्षिणिक भ्रमण के लिए इस स्थान को चुनने से नहीं चुकते। कभी भी यहाँ के भ्रमण में जनसामान्य अपनी छुट्टियाँ मनाने आते हैं। गार्डेन के अन्दर बाहर अपने खाने का इंतज़ाम, खेलते, कूदते, झुमते, टहलते, डांस करते व नदी किनारे लहरों का आनंद लेते हुए लोगों को देखा जा सकता है।

इस प्रकार यह महत्त्वपूर्ण स्थान प्राकृतिक आकर्षण का छटा समाहत करने के साथ नई तकनीकी जो जल जीवन की प्रक्रिया को समझने के ख़्याल से उपयोगी है। शुद्ध पानी के बनने में नदी में पानी को विभिन्न अनोखा, आश्चर्यजनक, जटील प्रक्रिया से गुजरने के बाद पानी की उपयोगिता व पानी संरक्षण की आवश्यकता को याद दिलाती है। एक ओर पानी की खपत लगातार बढ़ती जा रही है दूसरी ओर साफ पानी का दूरुपयोग आने वाले भविष्य की स्थिति चिंता व मंथन का विषय है। इस ख्याल से उस क्षेत्र में शुद्ध पीने लायक पानी के दुनिया में उपलब्धता व महत्त्व के बारे में वहाँ सार्वजनिक तौर पर आने वाले लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए वोर्ड लगाकर इसकी व्यवस्था करनी चाहिए ताकि भ्रमण पर आने वाला प्रत्येक व्यक्ति पीने में पानी के महत्त्व, देश, प्रदेश, विदेश में पानी की स्थिति के बारे में जानकारी पा सके, समाज में जागरूकता बढ़ सके और वे पेयजल को बरबाद न कर सकें।

गेहूँखाली क्षेत्र को और उत्थान करने की पूरी संभावना मौजूद है। वहाँ अवस्थित पार्क व पानी शुद्धीकरणवाले घेरा क्षेत्र को हल्दिया डेवलेपमेन्ट प्राधिकरण के द्वारा सौन्दर्यीकरण से इस क्षेत्र के महतव और बढ़ने से इन्कार नहीं किया जा सकता। नदी के किनारे सड़क के नीचे लम्बी दूरी तक सजावट, सौंदर्यीकरण के द्वारा पूरे क्षेत्र में चार चाँद लग जाएगा जो आम लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र दूर-दूर तक के लोगों के लिए होगा, जिससे इस पूरे क्षेत्र में विकास की गतिविधि-बढ़ाने में मदद मिलेगा। वहीं इन क्षेत्रों के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक घटनाओं, व्यक्तियों के बारे में जानकारी हेतु व्यवस्था हमारे देश की राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बढ़ाने में मदद करेगा।

संपर्क : एफ०सी०एस०ए०, जे०एन०वी० पूर्व मेदनीपुर, पं. बंगाल

DENSA
PHARMACEUTICALS PVT. LTD.

Fact. Add. :Plot No. 10, Dewan & Sons Udyog Nagar,
Taluka Palghar, Dist. Thane, MAHARASHTRA
Phone No.: (952525) 55285, 54471, Fax: 55286

&

DANBAXY
PHARMACEUTICALS PVT. LTD.
(SOFT GELATIN)

Fact. Add: Plot No. K-38, MIDC Tarapur,
Dahisar, Dist. Thane, MAHARASHTRA

Office Address:

1, Anurag Mansion, Ashokvan,
Shiv Vallabh Raod, Dahisar (E),
Mumbai-400068
Phone No.: 28974777, Fax: 28972458

MR. DEVENDRA KUMAR SINGH, C.M.D

Tele. : 0612-2352480

THE PEOPLE'S CO-OPERATIVE HOUSE CONSTRUCTION SOCIETY LTD.

KANKERBAGH, PATNA-800020.

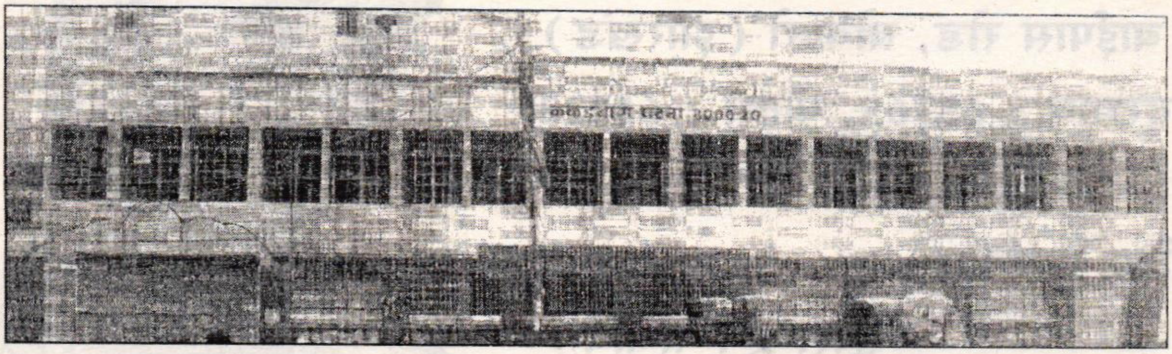

HIGHLIGHTS:

1. For members of lower & middle income group of people this society is said to be one of the largest co-operative house construction societies in Asia.
2. In the first phase 131.12 acres of land acquired by Government of Bihar were handed over to this society.
3. The society has got an opportunity to attract 1730 members from lower income group of people.
4. In all 1600 plots were bifurcated in planning out of which 10 plots were reserved for community hall, office building, godown and four-storied building for common utilities.
5. 1400 houses have so far been constructed by the members.
6. 500 members have been given housing loan through this society.
7. Boundary walls in 15 parks have already been constructed by the society.
8. In most of the sectors metalled & cemented roads have also been construcred.
9. Efforts are being made to improve the drainage system, to have plantation and lighting facilities.
10. In the second phase 7 acres of land have been purchased at Jaganpura village in which six houses have been constructed so far.
11. Out of 96 plots 95 plots have already been allotted to the members and one plot has been reserved for common utilities.
12. The society makes available its community hall to the members on priority basis for the marriage ceremony of their sons & daughters at half of the preseribed charges.
13. As far as possible the society tries to provide street light, maintain roads, clean manholes, construct park and other development activities.
14. All those members who have not filled up their nominee forms as yet are requested to deposit the forms duly filled in after getting the forms from the office of the society.

WITH REGARDS TO THE MEMBERS.

L.P.K. Rajgrihar
Chairman

Sidheshwar Prasad
Vice Chairman

Prof. M.P. Sinha
Secrectary

त्रिमूर्ति ज्वेलर्स

बाईपास रोड, बोकारो (झारखंड)

दूरभाष : 65765, फैक्स : 65123

परीक्षा प्रार्थनीय

–सुरेश एवं राजीव

त्रिमूर्ति अलंकार

त्रिमूर्ति पैलेस (रूपक सिनेमा के पूरब)

बाकरगंज, पटना–800004

दूरभाष : 2662837

आधुनिक आभूषणों के निर्माता,

नए डिजाइन,

शुद्ध सोने-चाँदी तथा हीरे के गहनों

का प्रमुख प्रतिष्ठान

"विचार दृष्टि" के संपादक श्री सिद्धेश्वर जी की निम्नांकित पुस्तकें तीस प्रतिशत रियायती दर पर उपलब्ध हैं।

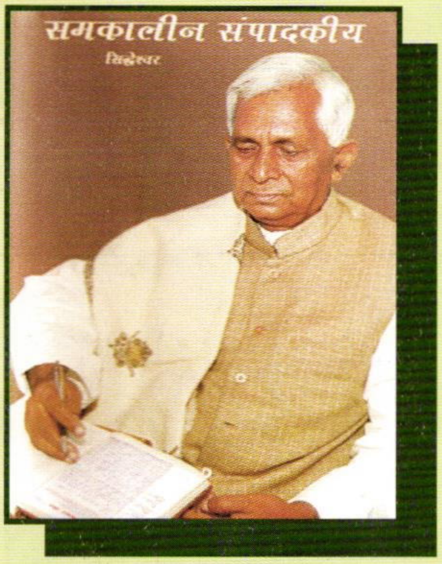

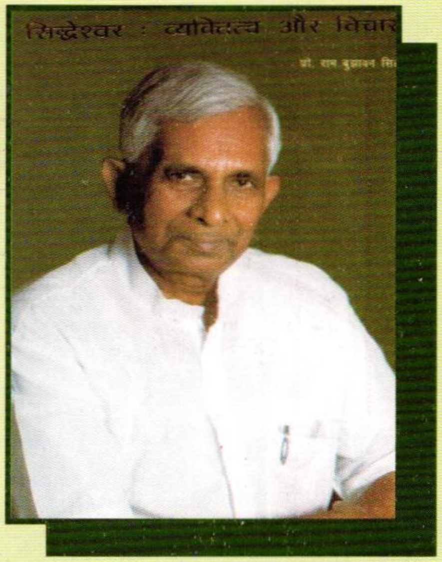

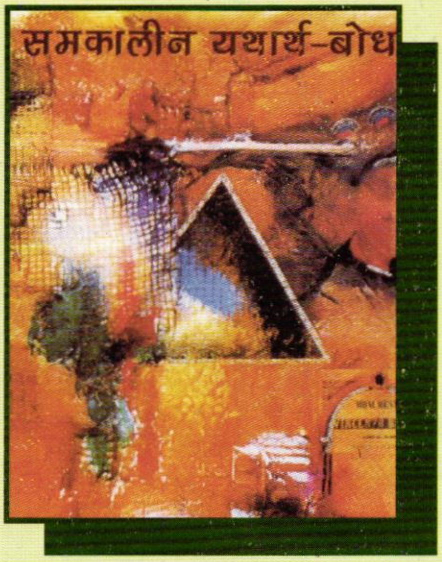

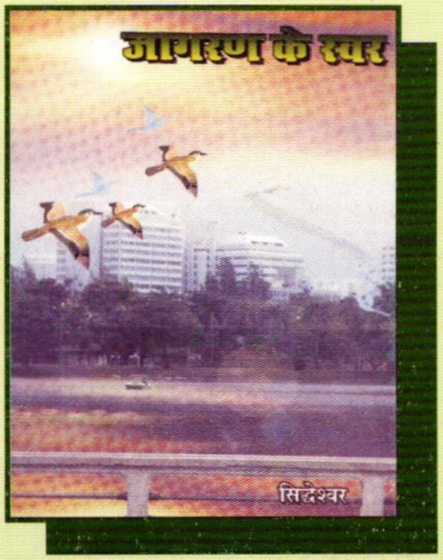

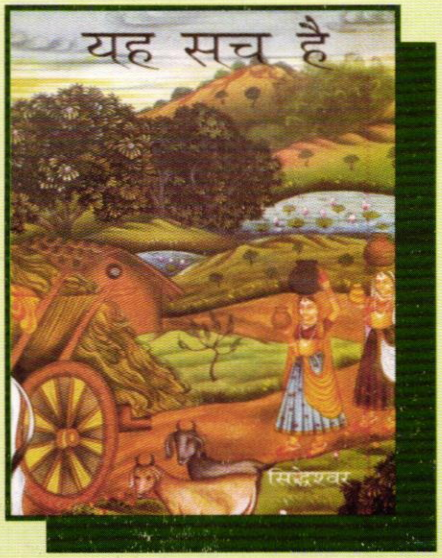

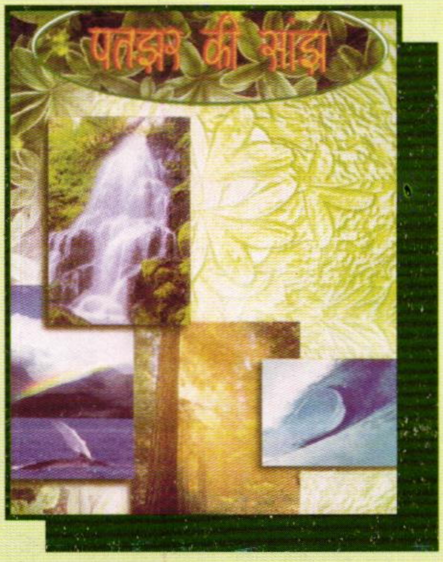

संपर्क : सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन

एस. पी. एन्फोटेक, डी–55, लक्ष्मी नगर, दिल्ली–110092

फोन : 22530652, 9811281443

Emmar MGF • Creating & New India

वर्ष 11 अप्रैल–जून, 2009 अंक–39 मूल्य : 25 रुपए

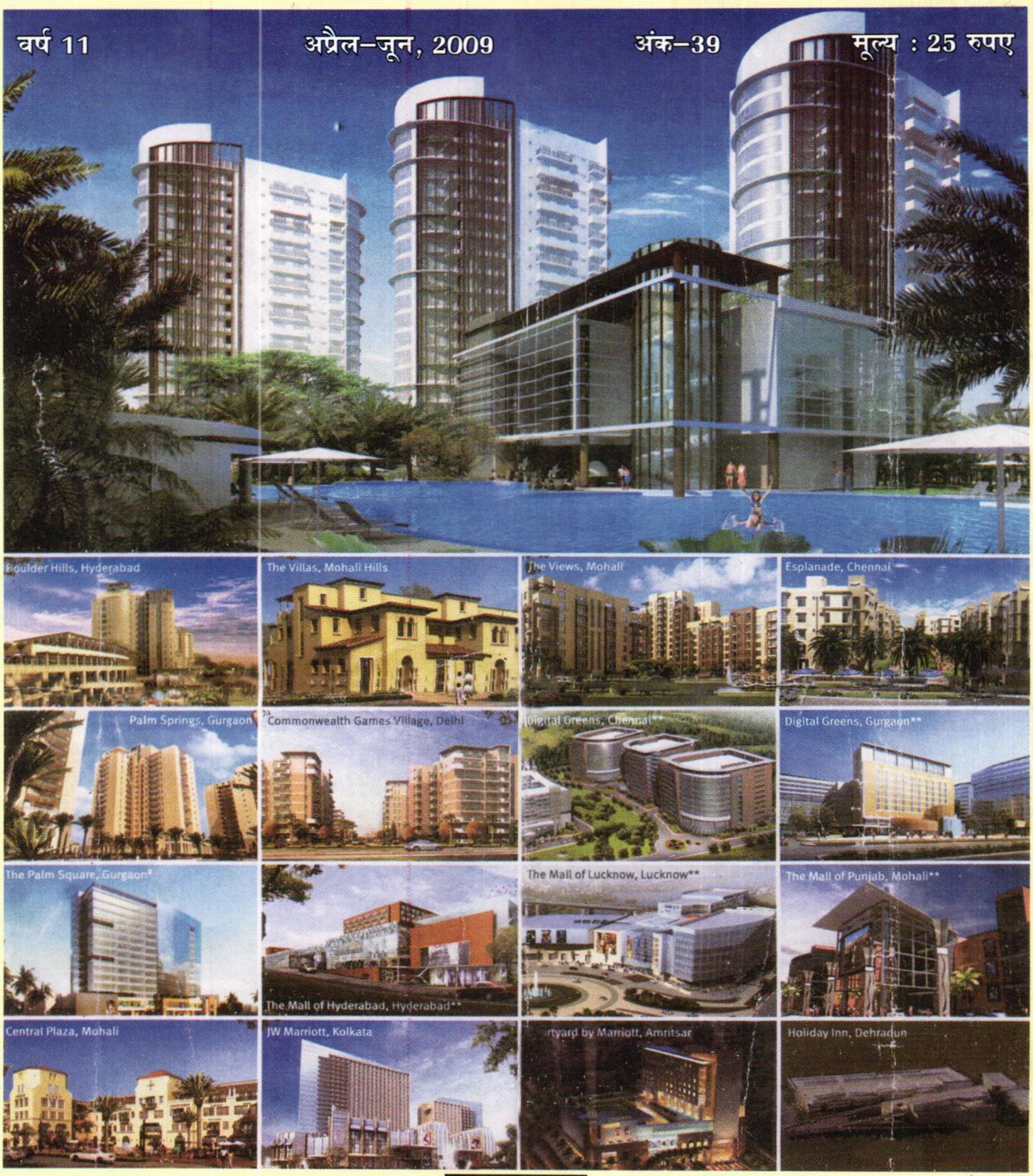

EMAAR MGF
CREATING A NEW INDIA

प्रकाशक, मुद्रक स्वामी सिद्धेश्वर द्वारा 'दृष्टि', यू–207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली–92 से प्रकाशित एवं प्रोलिफिक इन्टरकारपोरेटिड, एक्स–47, ओखला फेस–2, नई दिल्ली से मुद्रित। संपादक – सिद्धेश्वर